दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 28 अंक नं० 2

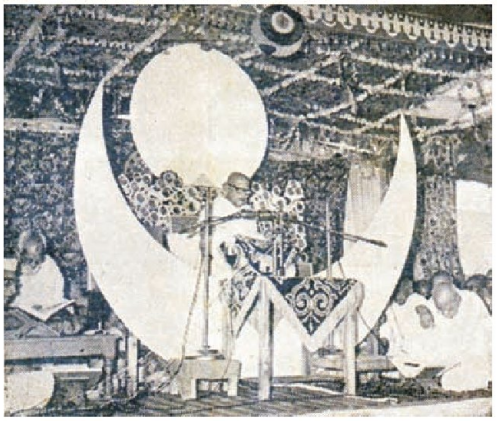

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

हे गुरुदेव! आपकी मंगल-दोज ने हमारे अंतर में भेदज्ञान-दोज उदित की है... आप ज्ञान-दोज के द्वारा केवलज्ञान-पूर्णिमा को बुला रहे हैं... मात्र चार भव में अनंत आनंदसहित वह पूर्णिमा उदित होगी और जगत के जीवों को ज्ञान-प्रकाश से पावन करेगी।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जुलाई : 1972] वार्षिक मूल्य 4) रुपये (326) एक अंक 35 पैसा [ज्येष्ठ : 2498

सत्समागम अर्थात् मुमुक्षुता की पुष्टि

आत्मस्वभाव की आराधना, वह मुमुक्षु का ध्येय है... उस ध्येय की सफलता के लिये आराधक-धर्मात्माओं का सत्समागम करके वह अपनी आत्मार्थिता को पुष्ट करता है।

—ऐसे आराधक जीवों का सत्समागम प्राप्त होना अति दुर्लभ है, क्योंकि जगत के जीवों में आराधक जीव अनंतवें भाग हैं। ऐसा होने पर भी आत्मा को साधने के लिये जागृत हुए मुमुक्षु को किसी न किसी प्रकार उसका मार्ग बतानेवाले ज्ञानी मिल ही जाते हैं।

'सत्समागम' अर्थात् रागादि से भिन्न ज्ञानचेतनारूप परिणमित ज्ञानी को पहचानकर उसका समागम; उस ज्ञानी के ज्ञानभावों की पहिचान होने पर मुमुक्षु के परिणाम आत्मस्वभाव की ओर झुकते हैं, उसकी आत्मार्थिता पुष्ट होती है और राग का रस छूट जाता है। ऐसा होने से जिनका कभी अनुभव नहीं किया था, ऐसे अपूर्व शांति के भाव अपने में जागृत होते हैं। —ज्ञानी के सच्चे सत्समागम का ऐसा फल अवश्य आता है।

हे भाई, ऐसे दुर्लभ सत्समागम की प्राप्ति का एवं आत्मार्थ की पुष्टि करके शांति के वेदन का यह स्वर्ण-अवसर है। अब तेरा एक ही कर्तव्य है कि अन्य सबका रस छोड़कर, प्रतिसमय स्व की संभाल करके, सर्वप्रकार से आत्मवस्तु की महिमा को घोंट-घोंटकर राग से भिन्न चैतन्यभाव का अंतर में वेदन कर। अब तू इसी प्रयत्न में लग जा! बस तेरा बेड़ा पार है... शांति अपार है।

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

जुलाई : 1972 ☆ ज्येष्ठ : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 28 वाँ ☆ अंक : 2

अध्यात्मधाम में अनुभव का मंगलाचरण

[ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को श्री समयसार कलश 23 के प्रवचन से]

चार महीने दो दिन का मंगल-विहार समाप्त करके पूज्य स्वामीजी ज्येष्ठ शुक्ला तृतीया को सोनगढ़ अध्यात्मधाम में पधारे। उसी दिन अपने प्रथम प्रवचन में आत्मानुभव की जोरदार प्रेरणा देते हुए, श्री समयसार कलश 23 के प्रवचन में कहा कि—

अहो! यह चैतन्यभगवान राग से पृथक् विलसित है—उसे हे जीवो! तुम देखो! 'मरकर भी' ऐसे चैतन्यतत्त्व का अनुभव करो।

मरकर तो कुछ नहीं हो सकता, परंतु 'मरकर' अर्थात् बाह्य में मरण जितनी प्रतिकूलता आये, तब भी आत्मा का अनुभव कर... तीव्र प्रयत्न करके कुतूहलपूर्वक-आश्चर्यपूर्वक-महिमापूर्वक अंतर में देख तो सही कि अनंत ज्ञान, अनंत सुख और अनंत आनंदवाला तेरा स्वरूप कैसा है?—इसप्रकार गहरे-गंभीरतत्त्व में उतरकर उसका अनुभव कर!....

देखो, इस मंगलाचरण में आत्मा के अनुभव की बात आयी... आत्मा का अनुभव करना, वह अपूर्व मंगल है।

अहा, आत्मा अनंत शांतिस्वरूप है। अनंत तीर्थंकर जिसका गुणगान करते हैं, संत पुकार-पुकारकर जिस तत्त्वदर्शन के लिये तुझे जागृत करते हैं... तो ऐसा तत्त्व अंतर में कैसा है, उसे ढूँढ़!

आत्मा आनंदमूर्ति है, शरीर भवमूर्ति है। तू मूर्तशरीर एवं रागादि में लीन हुआ है, उसके बदले उनसे भिन्नता जानकर उनका पड़ोसी हो... और अंतर में-निजगृह में-आकर चैतन्यतत्त्व का अवलोकन कर! ऐसे तत्त्व को अनुभव में लेने पर तेरा शरीरादि के साथ एकत्वबुद्धि का मोह तुरंत छूट जायेगा। मोह को छूटते देर नहीं लगेगी... अद्भुत चैतन्य को देखते ही तेरा मोह तुरंत छूट जायेगा।

भाई, वर्तमान में तो अत्यंत शांत होकर ऐसे आत्मा के अनुभव का अवसर है। भाई, इस जगत के कोलाहल में मत पड़! अरे, इस शरीर के साथ और रागादि का लक्ष छोड़कर उनसे भिन्न चैतन्यतत्त्व को लक्ष में लेने से तुझे कोई महा आनंद होगा और तेरा मोह शीघ्रता से टूट जायेगा। दो घड़ी के प्रयत्न से हो सके, ऐसा यह कार्य है। अहा, एकबार राग का पक्ष छोड़कर भीतर चैतन्य को पृथक् देख... उसे देखने पर ज्ञान परभावों से ऐसा पृथक् हो जायेगा कि सदा पृथक् का पृथक् ही रहेगा, फिर कभी तुझे राग के साथ एकता भासित नहीं होगी। तुझे भगवान अपने में ही दृष्टिगोचर होगा। यह चैतन्यवस्तु कोई साधारण वस्तु नहीं है, यह तो अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर महान पदार्थ है, इसकी सन्मुखता से महा आनंद का वेदन होता है। ऐसा अनुभव करने के लिये जो जागृत हुआ, वह जगत के किसी परिषह से—मृत्यु जैसा परिषह आने पर भी चलित नहीं होता।

आनंद का महासागर भरा हुआ है... उसमें डुबकी लगाकर उसकी एक बूँद का स्वाद लेने से भी रागादि समस्त परभावों का स्वाद छूटकर चैतन्य के किसी अपूर्व स्वाद का वेदन होता है। अहा! जिसकी एक बूँद में इतनी शक्ति है, उस महा आनंद सागर का तो कहना ही क्या?! ऐसे तो अनंत गुणों का सागर तू है... इतना महान तेरा आत्मा है... उसे तू एकबार जगत को भूलकर देख! तुझे आनंद के विलासरूप अपना आत्मा दृष्टिगोचर होगा और मोह का विलास तुरंत नष्ट हो जायेगा।

ऐसा अनुभव अंतर के महान उद्यम द्वारा करना, वह अपूर्व आनंद-मंगल है। उपयोगस्वरूप स्वद्रव्य को पर से भिन्न अनुभव में लेकर तू आनंदसहित प्रसन्न हो! रागादिरहित तेरा स्वद्रव्य चैतन्यभाव से ज्यों का त्यों सुशोभित है, उसे सावधान होकर, प्रसन्न होकर तू अनुभव में ले! अनुभव, वह महा आनंद का समुद्र है, वही मोक्ष का मार्ग है।

फतेपुर पंचकल्याणक महोत्सवः--

धन्य है माताका प्यार!

—नाम रखा नेमिकुमार

— पालना-झूलन —

शुद्धोसि...बुद्धोसि...निर्विकल्पोसि

तू शुद्ध है....तू बुद्ध....तू निर्विकल्प उदासी....
चेतनराजा! झूलो रे चैतन्यपालने....
नेमिकुंवर! झूलो रे चैतन्यपालने....

जन्माभिषेकके समय

तपती धूपमें भी शीतलताका अनुभव होता था

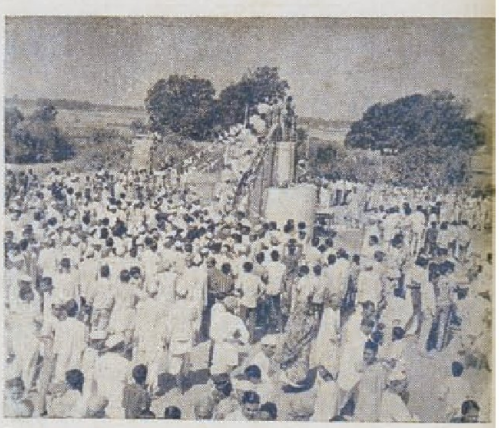

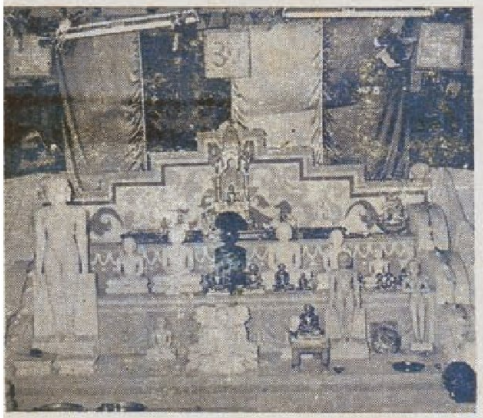

प्रतिष्ठा वेदी पर विराजमान जिनबिम्ब

अंकन्यास विधिका दृश्य

सहस्राम्रवनमें ध्यानस्थ नेममुनिराज

हे सारथि ! रथको रोको....रोको....रोको

पूज्य स्वामीजी की 83वीं जयन्ती

वैशाख शुक्ला दोज

जिनके प्रताप से भेदज्ञानरूपी मंगल दोज का उदय हुआ है, ऐसे मंगलमूर्ति स्वामीजी का आज 83वाँ जन्मोत्सव मनाया जा रहा है... इस अवसर पर सर्वप्रथम 'अष्ट' महागुण के कारणरूप तीन रत्नों के उपासक स्वामीजी को नमस्कार करता हूँ।

धन्य हुआ यह फतेपुर कि जहाँ पूज्य स्वामीजी का 83वाँ जन्मोत्सव मनाने के लिये भारत के विभिन्न स्थानों से आये हुए दस हजार से अधिक मुमुक्षु उमड़ पड़े हैं। प्रातः 4 बजे तो सब जन्म की आनंद बधाई देने को तैयार हो गये हैं। हजारों बल्वों की जगमगाहट से वीतराग-विज्ञाननगर एवं फतेपुर ग्राम अद्भुतरूप से शोभायमान है; नगर के द्वार पर दो हाथी पूज्य स्वामीजी का स्वागत करने के लिये आतुर खड़े हैं। हजारों भक्त जैनधर्म का जय-जयकार करते और मंगल-बधाई गाते-गाते प्रभातफेरी के रूप में आ रहे हैं। स्वामीजी प्रातःकाल प्रतिष्ठा-मंडप में पधारे और एकाग्रचित्त से जिनेन्द्रदेव के दर्शन किये; तत्पश्चात् जिनके प्रताप से हमें सच्चे जैनधर्म और मोक्षमार्ग की प्राप्ति हुई है, ऐसे पूज्य स्वामीजी को सबने परम उपकार-भाव से श्रीफल चढ़ाकर अभिवंदन किया। वीतराग-विज्ञाननगर में उमड़ा हुआ मुमुक्षुओं का समुदाय मानो यह प्रगट कर रहा था कि—हे गुरुदेव! वीतराग परमात्मा तीर्थंकर भगवंत तथा कुन्दकुन्दाचार्यादि संतों द्वारा प्ररूपित वीतरागी मोक्षमार्ग आपने हमें बतलाया है और उस सुंदर मार्ग को स्वीकार करके हम उसका अनुसरण कर रहे हैं।—ऐसे मार्ग की प्राप्ति हमें आपके प्रताप से हुई है, इसलिये आपका अवतार हमारे लिये कल्याण का कारण है। आपका जन्मोत्सव मनाते हुए वास्तव में तो हम अपने आत्महित का ही उत्सव मना रहे हैं।—ऐसी भावनापूर्वक मुमुक्षुगण गुरुदेव का अभिनंदन कर रहे थे।

एक विशाल दोज के चंद्र की रचना पर विराजमान स्वामीजी गंभीरतासहित शोभायमान थे। अहा, वैशाख शुक्ला दोज... वह तो मानों ज्ञान की उज्ज्वल दोज का उदय हुआ है... और ऊपर पूर्णिमा का दृश्य ऐसा था मानों स्वामीजी दोज के द्वारा केवलज्ञान-पूर्णिमा को बुला रहे हों! इसप्रकार दोज और पूर्णिमा के बीच विराजमान स्वामीजी का दृश्य देखते ही

बनता था। एक ओर हजारों श्रीफलों का ढेर था, दूसरी ओर शहनाई के मंगलस्वर वातावरण में गूँज रहे थे; मुमुक्षुओं की लंबी कतार लग रही थी और जय-जयकार के कोलाहल से प्रतिष्ठा-मंडप गूँज रहा था।

अचानक ही सारा कोलाहल शांत हो गया... क्यों ?—क्योंकि स्वामीजी ने गंभीर-ध्वनि से सिद्धप्रभु का स्मरण करके मंगलाचरण सुनाना प्रारंभ किया। समयसार की पहली गाथा द्वारा अनंत सिद्धभगवंतों का स्मरण करके कहा कि—ऐसे सिद्धभगवंतों को आत्मा में स्थापित करके उनका आदर करने से, उन्हीं जैसा अपना शुद्ध आत्मा लक्ष में आता है और राग से भिन्न चैतन्य की प्रतीति होने पर भेदज्ञानरूपी दोज का उदय होता है, वह अपूर्व मंगल है। और ऐसी दोज उदित हुई है, वह आगे बढ़कर केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी, होगी और अवश्य होगी... वह उत्कृष्ट मंगल है।

ऐसा मांगलिक सुनकर सबको अत्यंत प्रसन्नता हुई। उमंग भरे वातावरण में पूजनादि के पश्चात् गुरुदेव ने सुंदर प्रवचन द्वारा आनंदकारी भेदज्ञान-दोज की महिमा समझाकर कहा कि अरे जीव! एक बार तो ऐसी ज्ञान-दोज का उदय कर... (उस समय ऐसा लगता था कि वाह गुरुदेव! आपकी वैशाख शुक्ला दोज ने तो हमें भेदज्ञानरूपी दोज प्रदान की है।)

प्रवचन के पश्चात् आज के आनंदावसर पर सबने अपना हर्षोल्लास व्यक्त किया और 83 वीं जयन्ती के हर्षोपलक्ष में दानस्वरूप 83) की करीब एक हजार रकमें लिखवाई गईं।

देश के अनेक स्थानों से आये हुए अग्रगण्य विद्वानों, प्रमुख व्यक्तियों, कार्यकर्ताओं, हजारों मुमुक्षुओं एवं आराधक जीवों से सभा सुशोभित थी। सब स्वामीजी का अभिनंदन करने को आतुर थे; परंतु समय कम होने से छत-सात वक्ता ही बोल सके थे।

❖ प्रारंभ में सोनगढ़ के सुप्रसिद्ध विद्वान एवं प्रसिद्ध वक्ता श्री खीमचंदभाई ने अपने विशिष्ट शैली में उपस्थित समाज की ओर से गुरुदेव के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की और साथ ही सोनगढ़ की संस्था के आद्यप्रमुख माननीय श्री रामजीभाई की ओर से घोषणा की कि यहाँ फतेपुर में यह 83 वीं जयंती मनायी जा रही है और फतह हो गई है; अब अगले वर्ष 84 वीं जयन्ती सोनगढ़ में मनायी जायेगी, तब आप सब अवश्य पधारना। पूज्य गुरुदेव के उपदेश द्वारा

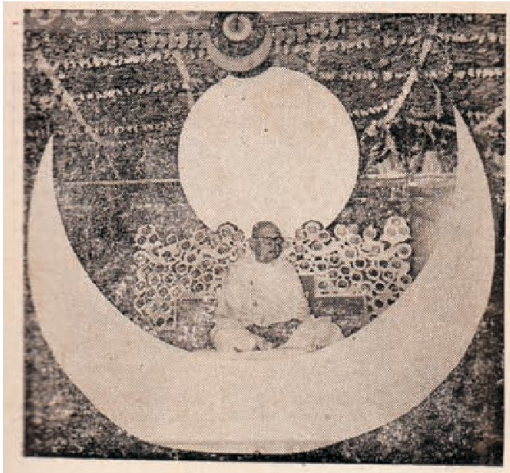

दोज और पूनमके बीच

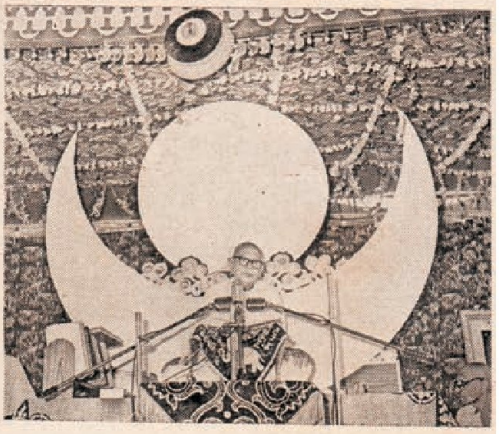

पूनम निकट आ गई

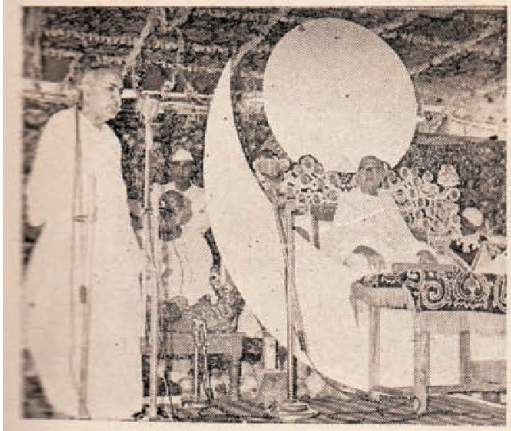

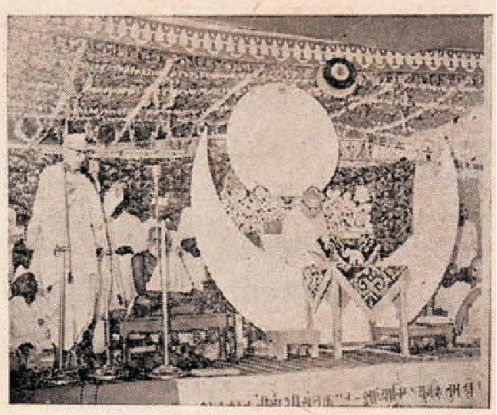

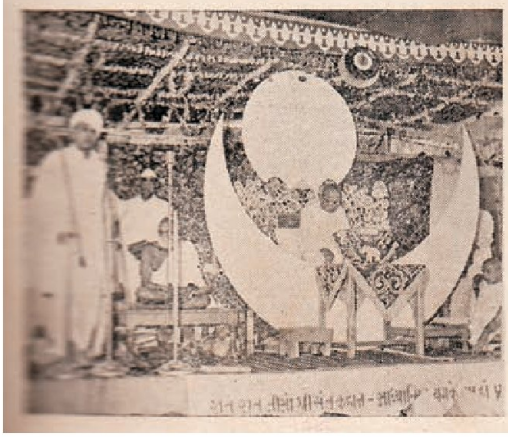

श्रीमान् साहूजी, पंडित फूलचंदजी, सेठ भागचंदजी और राजकुमारसिंहजी श्रद्धांजलि दे रहे हैं

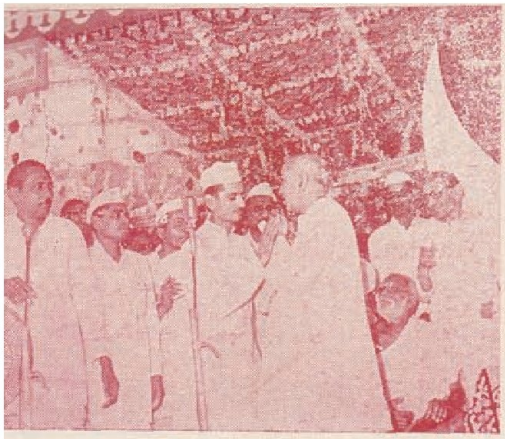

'बाबूभाईको धन्यवाद!'

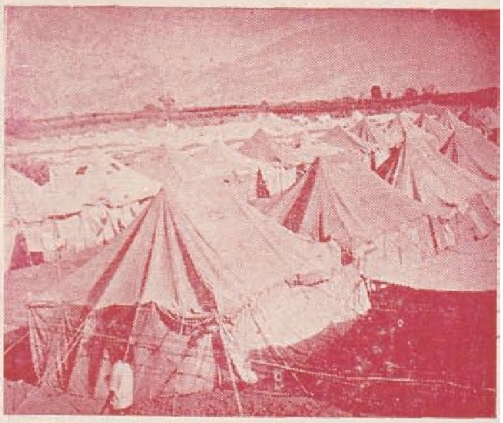

सीमन्धरनगरीका एक दृश्य

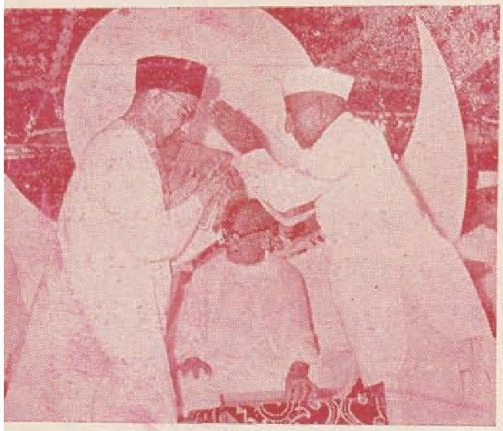

अतिथियोंका सन्मान

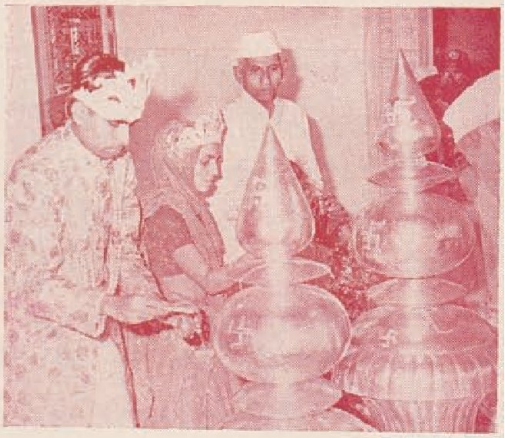

इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा कलश-शुद्धि

श्री साहू शांतिप्रसादजी द्वारा स्वाध्याय-मन्दिरका उद्घाटन : फतेपुर

हम सब चौरासी का चक्कर मिटाने का मार्ग प्राप्त करें—ऐसी भावना सहित सब मुमुक्षुओं को सोनगढ़ पधारने का हार्दिक आमंत्रण हम अभी से देते हैं।

❖ अखिल भारत जैन समाज के प्रसिद्ध नेता श्री सेठ साहू शांतिप्रसादजी ने अपनी ओर से तथा भारत के समग्र जैनसमाज की ओर से भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की थी (माननीय साहूजी का भाषण आप गतांक में पढ़ चुके हैं।) तथा 83 वीं जयंती के उपलक्ष में 8300) रुपये सोनगढ़ की संस्था को दान स्वरूप दिये थे।

❖ अजमेर के सेठ श्री भागचंदजी सोनी ने श्रद्धांजली देते हुए कहा कि—फतेपुर में भगवान के पंचकल्याणक हो रहे हैं और साथ ही श्री कानजीस्वामी की जयंती मनाने का भी अवसर मिला है। कुन्दकुन्दाचार्यादि मुनिवरों ने जो निर्ग्रंथमार्ग बतलाया है, वह मार्ग आज हमें श्री कानजीस्वामी के मुख से सुनने को मिल रहा है... उनके प्रति मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

❖ इंदौर के सेठ स्व. श्री हुकमचंदजी के सुपुत्र श्री राजकुमारसिंहजी ने उत्साह भरी अंजलि देते हुए कहा कि—आत्मकल्याण का मार्ग दिखाकर आज पूज्य स्वामीजी ने हमारे प्रति जो महान उपकार किया है, इससे बड़ा अन्य कोई उपकार नहीं हो सकता। हम भगवान महावीरस्वामी की परंपरा में आये और अपने को महावीर का अनुयायी माना; परंतु उनके मार्ग को भूलकर हम विपरीत मार्ग पर चल रहे थे... तब सच्चा मार्ग समझाकर पूज्य स्वामीजी ने हमें कल्याण के मार्ग में लगाया है।

❖ बनारसवाले पंडित फूलचंदजी सिद्धांतशास्त्री ने अपनी ऊर्मिभरी अंजलि अर्पण करते हुए कहा कि आज कानजीस्वामी के द्वारा दिगम्बर जैनधर्म की जो प्रभावना हो रही है, वह आपके समक्ष है। जैनशासन की प्रभावना और कानजीस्वामी—यह विषय एक-दूसरे से संबंधित हैं। हमें जैनशासन की प्रभावना करनी होगी तो पूज्य स्वामीजी को साथ रखना पड़ेगा; उनकी उपेक्षा करके जैनशासन की प्रभावना नहीं हो सकती। धर्म को जीवंत रखना हो, उसका प्रवाह सैकड़ों वर्ष तक चलाना हो और पाखंड का विस्तार रोकना हो तो हम सबको इन महान पुरुष का—जो हमारे बीच उपस्थित हैं—सन्मान करना होगा। यहाँ उपस्थित जैनसमाज के नेताओं से हम यह अपेक्षा अवश्य रखते हैं कि इन पर होनेवाले आक्रमण को रोकें, समाज की टूटती हुई शृंखला को रोकें और अपने सच्चे नेतृत्व द्वारा धर्म के प्रवाह को अक्षुण्ण रखने में

सहयोग दें। स्वामीजी दीर्घकाल तक स्वयं आनंद का स्वाद लेते रहेंगे और हमें भी आनंद का स्वाद देते रहेंगे।

❖ फतेपुर और गुजरात के जैनसमाज के नेता प्रसिद्ध वक्ता भाईश्री बाबूभाई ने उमंगभरी अंजलि अर्पित करते हुए कहा कि—गुरुदेव की जयंती मनाकर आज हम पावन हुए, हमारी नगरी पावन हुई, हमारा जीवन आज धन्य हुआ। मिथ्यामार्ग से छुड़ाकर गुरुदेव ने ही हमें सच्चा मार्ग समझाया है। उनके प्रताप से ही ऐसे महान उत्सव का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। उनका जितना उपकार मानें उतना कम है।

❖ श्री ब्रह्मचारी बाबूलालजी (उदासीन आश्रम इंदौर के अधिष्ठाता) ने श्रद्धांजलि अर्पित की और इसप्रकार की धर्मसभा, ऐसे श्रोता और ऐसे सभा-नायक कितने प्रभावशाली हैं—उनकी महिमा का वर्णन करते हुए कहा कि—अध्यात्म में सम्यक्त्वादिरूप दशा का जन्म होता है, वह जन्म-जयंती है। ऐसी जयंती द्वारा ज्ञान का प्रकाश होता है और अज्ञानांधकार दूर हो जाता है।

तदुपरांत अन्य अनेक त्यागी, विद्वान, कवि, साहित्यकार, पत्रकार तथा इंदौर निवासी मध्यप्रदेश के भूतपूर्व वित्तमंत्री श्री मिश्रीलालजी गंगवाल, दिल्ली के राजा टवायजवाले श्री कैलाशचंद्रजी, जैनावॉंच कंपनी के मालिक श्री प्रेमचंदजी, इंदौर के सेठ श्री देवकुमारजी, श्री परसादीलालजी पाटनी (मंत्री-भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा), फलटन के सेठ एवं बेंगलोर और गोहाटी आदि नगरों के अनेक सज्जन उपस्थित थे, परंतु समयाभाव के कारण वे बोल नहीं पाये थे परंतु उपरोक्त श्रद्धांजलियों में उन्होंने अपना स्वर मिलाकर संतोष प्राप्त किया था।

—इसप्रकार वैशाख शुक्ला दोज को पूज्य स्वामीजी की 83 वीं जयंती आनंदपूर्वक मनायी गई थी।

* * *

इधर पंचकल्याणक में दीक्षा कल्याणक के पश्चात् आज श्री नेमिमुनिराज को आहारदान की विधि सेठ श्री छोटालालभाई के घर हुई। उसमें भी श्री स्वामीजी द्वारा भक्तिपूर्वक नेमिमुनिराज को आहारदान देते देखकर (जिसप्रकार वज्रजंघ और श्रीमती द्वारा

आहारदान दिया जाने पर अन्य जीव प्रसन्न हुए थे, तद्नुसार) हजारों जीव प्रसन्न हुए थे। स्वामीजी भी प्रसन्नचित्त से भक्तिपूर्वक आहारदान दे रहे थे... और योगानुयोग आज वैशाख शुक्ला दोज को अपने जन्म-दिवस पर ही मुनिभगवंतों को आहारदान का लाभ मिलने से वे विशेष प्रसन्न हो रहे थे। पूज्य बेनश्री-बेन आदि ने भी भक्तिसहित मुनिभगवंत को आहार दिया था। आहारदान का वह प्रसंग देखकर रत्नत्रयमार्गी परमगुरु मुनिराज-भगवंतों के प्रति महान आदर-भक्ति के भाव जागृत होते थे। धन्य मुनि-जीवन! धन्य दिगम्बर जैन मुनियों की निर्दोष चर्या! आहारदान के पश्चात् नेमिमुनिराज के पीछे-पीछे सैकड़ों भक्त प्रतिष्ठा-मंडप में गये थे और वहाँ अद्भुत मुनिभक्ति की थी। लोग आश्चर्यचकित हो जायें कि वाह! मुनिवरों के प्रति सोनगढ़वालों की भक्ति कैसी अद्भुत है!....ऐसी वह भक्ति थी।

दोपहर को नेमिनाथ प्रभु को केवलज्ञान होने पर गिरनार के सहसावन में समवसरण की रचना का दृश्य हुआ था। इंद्रों ने केवलज्ञान की महापूजा की थी। रात्रि को कवि-सम्मेलन के पश्चात् भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव की अखिल भारतीय कमेटी का सम्मेलन हुआ था। श्री साहू शांतिप्रसादजी की अध्यक्षता में भारत के सैकड़ों विद्वानों एवं हजारों जिज्ञासुओं ने उसमें उत्साहपूर्वक भाग लिया था।

सम्मेलन के प्रारंभ में पूज्य स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि—लौकिक पढ़ाई और शास्त्रीय ज्ञान अधिक हो या न हो, वह अलग बात है। यहाँ तो जिससे संसार दुःख का अंत और चैतन्यसुख की प्राप्ति हो, उस वीतरागी विद्या की बात है। जिसे भेदज्ञानरूपी वीतरागी विद्या आ गई, वही सच्चा विद्वान है। पुनश्च, निर्वाण-महोत्सव के संबंध में गुरुदेव ने कहा कि—पहले जयपुर में जो कहा था, वही यहाँ फिर कहना है कि महावीर भगवान का निर्वाण-महोत्सव मनाना तो बड़ी अच्छी बात है; उसमें किसी को विरोध नहीं करना चाहिये। सबको मिलकर—परस्पर स्नेहपूर्वक जिसमें जैनशासन की प्रभावना हो, वह कार्य करना चाहिये। अन्यमत के प्रसिद्ध लोगों की जयंती मनायी जाती है, वह तो लौकिक है, और भगवान महावीर अलौकिक हैं; दूसरों के साथ उनकी तुलना नहीं की जा सकती। जैनों की संख्या भले ही कम हो, परंतु जैन तीर्थंकरों का मार्ग, वह तो अलौकिक मार्ग है; उसकी प्रभावना में सब मिलकर कार्य करें, यह अच्छी बात है।

इस संबंध में आत्मधर्म के संपादक की योजनाएँ ऐसी हैं कि—महावीर भगवान ने हमें जो धर्म का महान उत्तराधिकार दिया है, वह जैन-समाज में घर-घर पहुँचे, जैन का बच्चा-बच्चा यह समझ सके कि महावीर भगवान ने हमें कितना महान उत्तराधिकार दिया है! हम किसी सामान्य पुरुष के अनुयायी नहीं हैं, हम तो महावीर परमात्मा के अनुयायी एवं उत्तराधिकारी हैं। महावीरदेव ने हमें जो दिया, महावीर की परंपरा में जैन संतों ने हमें जो अमूल्य श्रद्धा-ज्ञान-आचरण के निधान दिये हैं, उन निधानों को अपना प्रत्येक बालक जाने और गौरवपूर्वक स्वयं वीर की संतान बने।—इसप्रकार हमें महान उत्सव का आयोजन करना चाहिये। दिल्ली की बड़ी मीटिंगें भले उनका अपना कार्य करें, हमें तो छोटे-बड़े प्रत्येक घर में महावीरस्वामी का निर्वाणोत्सव हो—ऐसा आयोजन करना चाहिये। प्रत्येक घर का बालक भी उसमें भाग लेकर गौरवपूर्वक कह सके कि हम अपने घर में भगवान का निर्वाणोत्सव मना रहे हैं।

2500 वें उत्सव के लिये श्रीमान् साहू शांतिप्रसादजी तथा अन्य अनेक अग्रगण्य लोग बड़े उत्साह से कार्य कर रहे हैं; समाज में तत्संबंधी अच्छी जागृति भी आयी है, परंतु अभी व्यवस्थित रूपरेखा तैयार नहीं हुई है। अभी हर एक प्रांत में समितियों की रचना हो रही है। हमें आशा है कि दो वर्ष की अवधि में व्यवस्थित आयोजन हो जायेगा और वीरप्रभु का जैन झंडा फिर एकबार विश्व को वीतरागता का संदेश देगा।

उद्घाटन-भाषण अजमेर के सेठ कैप्टन सर श्री भागचंदजी सोनी ने किया था। उसमें उन्होंने समस्त जैनों में परस्पर प्रेम, एकता एवं वात्सल्य की वृद्धि पर विशेष भार दिया था। गिरनारजी जैसे अपने तीर्थों की रक्षा और उनके विकास के संबंध में समाज को जागृत रहने की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि अपने जैनधर्म का प्राचीन वैभव मूर्तियों के रूप में यत्र-तत्र बिखर पड़ा है। भारत में जो दो-तीन सौ म्यूजियम (पुरातत्त्व संग्रहालय) हैं, उन सबमें प्राचीन दिगंबर जैन मूर्तियाँ है। आज यदि कहीं जमीन में से एक हजार प्राचीन मूर्तियाँ निकलें तो उनमें चार सौ-पाँच सौ जैन मूर्तियाँ होंगी। इस पर से हमें अपने जैनधर्म की प्राचीनता का ख्याल आता है। आज हमें भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाणोत्सव के आधार से जैनधर्म के सिद्धांतों के प्रचार का अवसर प्राप्त हुआ है। इस अवसर का उपयोग करके हम जैनधर्म का

गुरुदेवका फतेपुरमें आगमन

वीतरागविज्ञाननगर (प्रतिष्ठामण्डप)का प्रवेश-द्वार

स्वामीजीकी प्रवचन-सभाके दृश्य —

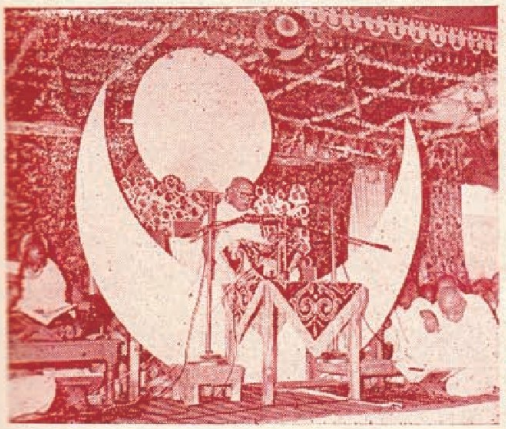

धन्य है चैतन्यकी अद्भुत बात !

सम्पादक प्रवचन लिख रहे हैं

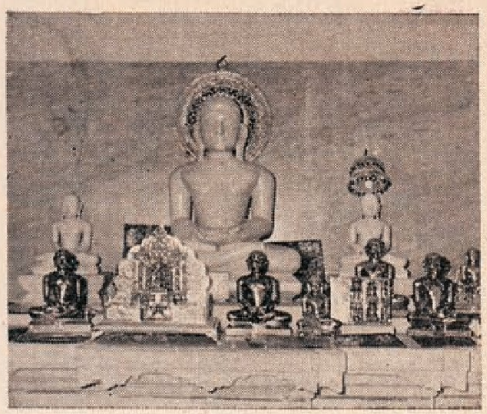

फतेपुरमें
विराजमान
श्री शीतलनाथ आदि
जिनभगवन्त

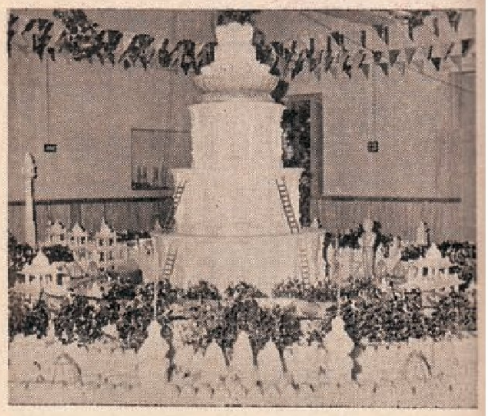

समवसरण मन्दिरमें
सीमन्धर भगवान
और
कुन्दकुन्दाचार्यदेव

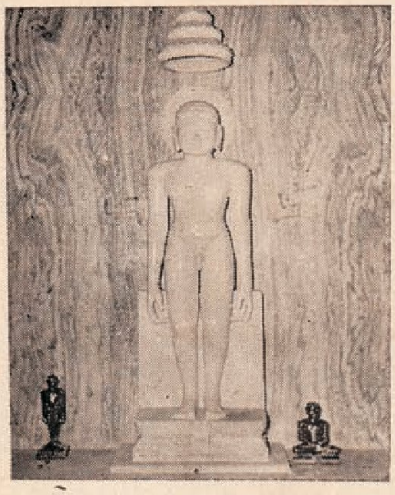

ऊपर विराजमान
शांतिनाथ भगवान

समवसरण–प्रतिष्ठाका एक दृश्य

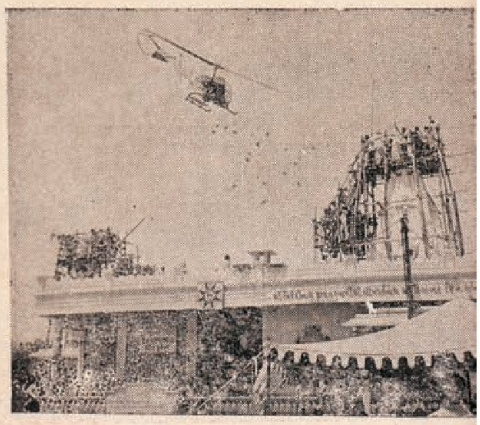

हेलिकोप्टर द्वारा पुष्पवृष्टि

प्रचार करें, बालकों को उसकी शिक्षा दें—ऐसी भावना उन्होंने तथा अन्य वक्ताओं ने व्यक्त की थी।

वैशाख शुक्ला तीज के प्रातःकाल गिरनार की पाँचवीं टोंक पर शुक्लध्यान में विराजमान नेमिप्रभु का दृश्य दर्शनीय था... कुछ ही देर में भगवान का मोक्ष हुआ और इंद्रों ने निर्वाणकल्याणक मनाया। निर्वाण की पूजा के साथ ही पंचकल्याणक की विधि पूर्ण हुई... वह जगत का कल्याण करो!

साढ़े दस बजे श्री साहू शांतिप्रसादजी ने स्वाध्यायमंदिर का उद्घाटन किया; उसमें पूज्य स्वामीजी के हाथ से जिनवाणी की स्थापना हुई। ग्यारह बजे से समवसरण में जिनेन्द्र भगवान की प्रतिष्ठा प्रारंभ हुई। गुरुदेव ने भावपूर्ण चित्त से सीमंधरनाथ की प्रतिष्ठा में भाग लिया। समवसरण में विराजमान सीमंधरप्रभु और उनके सन्मुख खड़े हुए भरतक्षेत्र के धर्मधुरंधर संत कुन्दकुन्दाचार्यदेव, यह दृश्य देखकर सबको आनंद होता था। बड़े ही आनंद सहित प्रभु की प्रतिष्ठा हुई। मंदिर के ऊपरी भाग की वेदी में भगवान शांतिनाथ की खड्गासन प्रतिमा की प्रतिष्ठा हुई। अहा! शांतिनाथ भगवान की शांत-मुद्रा मोक्ष-साधन की रीति बतला रही है। नीचे की वेदी में पहले के मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान ज्यों के त्यों-पूर्ववत् विराजमान हैं। भगवान की प्रतिष्ठा के बाद मंदिर के भव्य शिखर पर कलश एवं ध्वजारोहण हुआ था। मुख्य कलश के अतिरिक्त अन्य 83 लघु कलश भी मंदिर की शोभा में अभिवृद्धि कर रहे हैं।

जब भगवान की प्रतिष्ठा हुई, तब हजारों दर्शकों की भीड़ के हर्षनाद से वातावरण गूँज रहा था। सारे बाजार में तो कहीं पैर रखने की जगह नहीं थी; इतनी अपार भीड़ फतेपुर में पहले कभी एकत्रित नहीं हुई थी। बम्बई की भूलेश्वर की भीड़ से भी अधिक भीड़ फतेपुर के खेतों में दिखायी दे रही थी—मानो जंगल में मंगल हो रहा था। और धरती की हलचल से भी अधिक हलचल आकाश में हो रही थी; क्योंकि आकाश में हेलिकॉप्टर द्वारा पुष्पवर्षा हो रही थी। इस पुष्पवृष्टि का दृश्य देखते ही बनता था। इसे देखने के लिये आसपास के ग्रामों से करीब 10 हजार लोग चिलचिलाती हुई धूप में उमड़ पड़े थे। वे हेलिकॉप्टर द्वारा होनेवाली पुष्पवृष्टि को हर्षविभोर होकर देख रहे थे, परंतु वे यह नहीं समझ पा रहे थे कि—हेलिकॉप्टर

से होनेवाली यह पुष्पवृष्टि किस पर हो रही है! अधिक से अधिक वे यह देख पाते थे कि पुष्पवृष्टि मंदिर पर हो रही है, किंतु मंदिर में विराजमान भगवान कैसे वीतराग-सर्वज्ञ हैं और उन्होंने कैसा अद्भुत मोक्षमार्ग बतलाया है!—इसकी जन-साधारण को कहाँ से खबर हो सकती है? मुमुक्षुओं को ऐसे दृश्यों के द्वारा अरिहंत भगवान की और उनके मार्ग की महिमा देखकर अकथनीय आनंद हो रहा था। वीतराग भगवान के प्रति परम भक्तिसहित पूज्य बेनश्री-बेन ने भी हेलिकॉप्टर द्वारा पुष्पवृष्टि की थी। समवसरण में विराजमान सीमंधरभगवान पर दोनों धर्म-माताओं के द्वारा पुष्पवृष्टि होती देखकर परम आनंद हो रहा था और विदेहक्षेत्र के मधुर संस्मरण जागृत हो रहे थे।

—इसप्रकार अत्यंत आनन्दोल्लास से परिपूर्ण वातावरण में फतेपुर में भगवान जिनेन्द्रदेव की मंगल-प्रतिष्ठा का भव्य महोत्सव समाप्त हुआ... वह भव्य जीवों का कल्याण करे!....

वैशाख शुक्ला तीज की रात्रि में पूज्य गुरुदेव के मंगल आशीर्वादपूर्वक सेठ श्री साहू शांतिप्रसादजी द्वारा भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव के लिये गुजरात-सौराष्ट्र की शाखा का उद्घाटन हुआ। उस समय श्री साहूजी ने कहा कि—बहुत-सी समितियों के बनाने से काम नहीं होता। हमें तो काम करना है। इस बात का विशेष ध्यान रखना है कि बालकों को उत्तम संस्कार प्राप्त हों। गुजरात-सौराष्ट्र में जो मुमुक्षु-मंडल चल रहे हैं, वे यदि इस कार्य को सँभाल लें तो बड़ा अच्छा हो। साहूजी ने गुजरात और सौराष्ट्र के कार्यकर्ताओं का ध्यान गिरनार क्षेत्र की विकट परिस्थिति की ओर आकर्षित किया था और इस संबंध में विशेष ध्यान देने का अनुरोध किया था।

तत्पश्चात् जैनावाच कंपनी, दिल्ली के मालिक श्री लाला प्रेमचंदजी तथा अजमेरी निवासी सेठ श्री भागचंदजी सोनी इत्यादि ने भी इस संबंध में भाषण दिये थे। श्रीमान् सोनीजी ने कहा कि—भगवान महावीर 2500वाँ निर्वाण-महोत्सव मनाने का यह अवसर अपने जीवन-काल में प्राप्त हुआ, यह हमारा अहो भाग्य है! निर्वाण-महोत्सव के उस वर्ष में भारत की समस्त भाषाओं में तथा संसार के अधिकांश देशों में भगवान महावीर का नाम और उनके सिद्धांतों का प्रसार होगा। भगवान महावीर के पश्चात् आज तक के ढाई हजार वर्षों में अनेक

महापुरुष हो गये हैं, किंतु यह महोत्सव मनाने का सुअवसर तो हम लोगों को ही प्राप्त हुआ है, यह हमारा परम सौभाग्य है। अन्य अनेक वक्ताओं ने भी इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किये थे। भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण-महोत्सव के प्रति देश की संपूर्ण जैनसमाज में अत्यधिक उत्साह है; इस उत्साह के अनुसार उत्तमोत्तम कार्य एवं धर्मप्रचार हो, ऐसी भावना भाते हैं।

वैशाख शुक्ला चौथ को प्रवचन के बाद शांतियज्ञ हुआ था। तत्पश्चात् प्रतिष्ठा महोत्सव की समाप्ति पर हजारों नर-नारी अपने-अपने स्थानों के लिये रवाना हुए। दोपहर के प्रवचन के पश्चात् महोत्सव की खुशी में भगवान जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा निकली थी। अजमेर से आये हुए कलात्मक रथ में भगवान विराजमान थे। रात्रि को समवसरण में मंगलभक्ति हुई थी। इसप्रकार फतेपुर में पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा का मंगल-महोत्सव सानंद संपन्न हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल जिनेन्द्र-भक्ति कराके पूज्य स्वामीजी ने फतेपुर से बामणवाडा की ओर प्रस्थान किया।

उत्तम तीर्थ कौन ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमित आत्मा, वह उत्तम भावतीर्थ है, संसार से वह स्वयं तिर रहा है और दूसरों को तिरने में निमित्त है। तथा ऐसे भावतीर्थ के विहार से पावन हुए तीर्थों में उत्तम तीर्थ सम्मेदशिखर है।

मृत्यु अर्थात् आराधना का महोत्सव

[समाधिमरण के अवसर पर आराधक का शौर्य]

मृत्यु का नाम सुनते ही लोग डर जाते हैं, किंतु मृत्यु वास्तव में कोई भयानक वस्तु नहीं है। चैतन्य के साधक जीव को मृत्यु का अवसर तो आराधना के शौर्य एवं समाधि के महोत्सव का प्रसंग है। ऐसे प्रसंग पर धर्मात्मा के परिणामों में आराधना का कैसा उत्साह होता है, उसका यह वर्णन है। इस मृत्यु-महोत्सव का प्रथम भाग (31 छंद) आत्मधर्म अंक 324 A में दिया जा चुका है; शेष भाग यहाँ दिया जा रहा है। इसमें आत्मसाधना में शूरवीर मुनिवरों के दृष्टांत देकर मुमुक्षु के भीतर आराधना का उल्लास जागृत किया गया है।

(32) धन्य धन्य सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो,
तौ भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी॥

धन्य हैं वे सुकौशल मुनिराज! जिनकी माता मरकर व्याघ्री (बाघिन) हुई और उसने उनके शरीर को खा लिया, तथापि वे मुनिराज किंचित्मात्र नहीं डिगे और उन्होंने अपने आत्महित की साधना की... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(33) देखो गजमुनि के सिर ऊपर, विप्र अग्नि बहु बारी,
सीस जले जिम लकड़ी तिनको, तो हू नाहिं चिगारी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु-महोत्सव भारी॥

देखो, गजकुमार मुनि के मस्तक पर ब्राह्मण ने अग्नि प्रज्वलित की, जिससे उनका मस्तक लकड़ी की भाँति जलने लगा, तथापि उन्होंने आह तक नहीं की, और उस भयंकर उपसर्ग को धैर्य धारण करके आराधनापूर्वक सहन किया... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महामहोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(34) सनतकुमार मुनी के तन में, कुष्ट-वेदना व्यापी,
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंत्यो गुन आपी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

सनतकुमार मुनि के शरीर में तीव्र कुष्ठरोग व्याप्त हुआ, जिससे शरीर छिन्न-भिन्न हो गया था, तब उन्होंने आत्मगुणों का चिंतवन किया था और स्थिरतापूर्वक उस उपसर्ग को सहन करके चित्त में आराधना को धारण किया था... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा

(35) श्रेणिक-सुत गंगा में डूब्यो, तब 'जिन' नाम चितारो,
धर संलेखना परिग्रह छोड्यौ, शुद्ध भाव उर धारो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

जब श्रेणिकराजा का पुत्र गंगा में डूब गया, तब उसने जिनदेव का चिंतवन किया और संल्लेखना धारण करके परिग्रह का परित्याग किया तथा अंतर में शुद्धभाव प्रगट किया। इसप्रकार स्थिरतापूर्वक उपसर्ग सहन करके चित्त में आराधना धारण की... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(36) समंतभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा-वेदना आई,
ता दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चित्यो निज गुन भाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

समंतभद्र मुनिराज के शरीर में भस्मक व्याधि के कारण तीव्र क्षुधा-वेदना व्याप्त हुई,

तथापि उस दु:ख में भी वे मुनिराज अडिग रहे और उन्होंने आत्मगुणों का चिंतवन किया। हे भाई! ऐसे उपसर्ग को भी स्थिरतापूर्वक सहन करके उन्होंने अपने चित्त में आराधना धारण की... तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(37) ललितघटादिक तीस-दोय मुनि, कोसाम्बी तट जानो,
नदी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

ललितघट आदि बत्तीस मुनिराज कौशाम्बी नगरी में नदीतट पर ध्यानमग्न थे, तब वे पानी के प्रवाह में बहकर मरण को प्राप्त हुए, तथापि उन्होंने कोई दु:ख नहीं माना और स्थिरतापूर्वक उस उपसर्ग को सहन करके चित्त में आराधना धारण की... तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(38) धर्मघोष मुनि चम्पानगरी बाह्य ध्यान धर ठाढो,
एक मास की कर मर्यादा, तृषा-दु:ख सह गाढ़ो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

धर्मघोष मुनि ने चम्पानगरी के उद्यान में एक महीने के अनशनपूर्वक सुदृढ़ ध्यान धारण करके घोर तृषा-दु:ख सहन किया और उस उपसर्ग को स्थिरतापूर्वक सहन करके वे आराधना में अडिग रहे।....तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सचव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(39) श्रीदत्त मुनि को पूर्व जन्म का, वैरी देव सु आके,
विक्रिय कर दुख शीत-तनो जो, सह्यो साधु मन लाके।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

पूर्वजन्म के शत्रु देव ने विक्रिया के द्वारा श्रीदत्त मुनि को शीत का उपसर्ग किया किंतु

मुनिराज ने स्थिरता धारण करके वह उपसर्ग सहन किया और आराधना से चलित नहीं हुए... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(40) वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर, ध्यान धरो मन लाई,
सूर्य-घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

वृषभसेन मुनि ने शांतचित्त से तप्त शिला पर ध्यान धारण किया और सूर्य की धूप तथा गर्म पवन की घोर वेदना सहन की। ऐसे उपसर्ग को सहन करके भी वे आराधना से चलायमान नहीं हुए... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(41) अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई,
वैरी चंड ने सब तन छेद्यो, दुःख दीनो अधिकाई।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

काकंदीपुर में अभयघोष मुनि ने घोर वेदना प्राप्त की, चण्ड नामक शत्रु ने उनके शरीर को वेधकर अपार दुःख दिया, तथापि उन्होंने स्थिरचित्त से उपसर्ग सहन करके आराधना में चित्त लगाया। ... तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(42) विद्युच्चर ने बहु दुःख पायो, तो भी धीर न त्यागी,
शुभ भावनसों प्रान तजे निज, धन्य और बड़भागी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधना चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

विद्युतचर मुनि ने भीषण दुःख पाकर भी धैर्य नहीं छोड़ा; और अपनी उत्तम भावनापूर्वक देहत्याग किया; वे धन्य और महा भाग्यशाली हैं जिन्होंने स्थिरतापूर्वक ऐसा

उपसर्ग सहन किया। ...तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(43) पुत्र-चिलातो नामा मुनि को, वैरी ने तन घाता,
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज-गुन राता।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधना चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

चिलातीपुत्र नामक मुनि के शरीर का उनके शत्रु ने घात किया; उसमें बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये, तथापि मुनिराज निजगुण में ही लीन रहे और उस उपसर्ग को उन्होंने स्थिर चित्तपूर्वक सहन किया।...तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(44) दंडक नामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी,
ता पर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म-महारिपु छेदी।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव धारी॥

दंडक नामक मुनि के शरीर को शत्रु ने बाणों द्वारा छेद डाला, तथापि वे मुनिराज रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए; और उन्होंने कर्म-महारिपु को छेद डाला। ऐसा उपसर्ग उन्होंने स्थिरचित्त से सहन किया और आराधना में दृढ़ रहे ...तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(45) अभिनंदन मुनि आदि पाँच सौ, घानी पेलि जु मारे,
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरव कर्म विचारे।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दु:ख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

अभिनंदन आदि पाँच सौ मुनियों को घानी में पेल डाला, तथापि उन मुनियों ने पूर्वकर्म का फल समझकर समता धारण की। ऐसा उपसर्ग स्थिरतापूर्वक सहा और आराधना में अडोल रहे। ...तो हे जीव! तुझे क्या दु:ख है ? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(46) चाणक मुनि गौधर के मांहीं, मूंद अगिनि परजाल्यो,
श्रीगुरु उर सम-भाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो।
यह उपसर्ग सह्या धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

गौशाला में स्थित चाणक्य मुनि को किसी दुष्ट ने अग्नि में जला दिया, परंतु श्रीगुरु ने तो अंतर में समभाव धारण करके अपने स्वरूप की सँभाल की; चित्त में आराधना धारण करके स्थिर चित्त से वह उपसर्ग सहन किया... ...तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(47) सात शतक मुनिवर दुःख पायो, हथिनापुर में जानो,
बलि ब्राह्मण-कृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

बलि मंत्री द्वारा घोर उपद्रव के कारण हस्तिनापुर में सात सौ मुनियों ने दुःख प्राप्त किया, परंतु वे मुनिवर किंचित् खेद-खिन्न नहीं हुए; उन्होंने स्थिर-चित्त से उपसर्ग सहन करके आराधना में चित्त लगाया। ...तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(48) लोहमयी आभूषण गढके, ताते कर पहराये,
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तो भी नहीं चिंगाये।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित्त धारी,
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु-महोत्सव भारी॥

(शत्रुंजय पर्वत पर) पाँच पाण्डव मुनिराजों को लोहे के धधकते हुए आभूषण पहिनाकर उपद्रव किया, तथापि वे मुनिवर चलायमान नहीं हुए; ऐसा उपसर्ग शांत-चित्त से सहकर वे आराधना में स्थिर रहे ...तो हे जीव! तुझे क्या दुःख है? तू मृत्यु को महा-महोत्सव मानकर अपना चित्त आराधना में लगा।

(49) और अनेक भये इस जग में, समता-रस के स्वादी,
वे ही हमको हों सुखदाता, हरिहू ठेव प्रमादी।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों,
ये ही मोकों सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों।

दूसरे भी अनेक मुनि भगवंत इस जगत में हो गये हैं, वे समता-रस का स्वाद लेनेवाले तथा आराधना में शौर्यवान थे... अहो! उनका स्मरण हमें आराधना का उत्साह जागृत करके सुख प्रदान करता है और प्रमाद की टेव छुड़ाता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र और तप, यह चारों आराधनाएँ मुझे सुख की दाता हैं; उन्हें मैं सदा अपने अंतर में धारण करता हूँ।

(50) यो समाधि उर मांहीं लावो, अपनो हित जो चाहो,
तजि ममता अरु आठों मद को, ज्योति-सरूपी ध्यावो।
जो कोई नित करत प्रयानो, ग्रामांतर के काज,
सो भी सगुन विचारे नीके, शुभ के कारन साज॥

इसप्रकार हे भव्य जीवो! यदि तुम हित चाहते हो तो अंतर में समताभाव धारण करो और ममता तथा आठों मद को छोड़कर ज्योतिस्वरूप आत्मा का ध्यान करो। लोक में भी जो कोई परग्राम के लिये प्रयाण करता है, वह शुभ-कार्य के लिये शुभ-शकुन का विचार करके निकलता है।

(51) मात-पितादिक सर्व कुटुंब मिलि, नीके सगुन बनावैं,
हलदी धनिया पुन्गी अक्षत, दूध दहीं फल लावैं।
एक ग्राम जावन के कारन, करें शुभाशुभ सारे,
जब पर-गति को करत पयानो, तब नहि सोचो प्यारे॥

उसके माता-पितादि सब कुटुंबीजन मिलकर उत्तम शकुन के हेतु हलदी, धना, सुपारी, अक्षत, दूध, दही, फल आदि लाते हैं। इसप्रकार एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाने में भी शुभाशुभ का विचार करते हैं, तब हे प्रिय मुमुक्षु! परभव को प्रयाण करने के अवसर पर क्या तुम उसका विचार नहीं करोगे?

(52) सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागै, तोहि रुलावें सारे,
ये अपसगुन करें सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे।
अब पर-गति को चालन बिरियां, धर्म-ध्यान उर आनो,
चारों आराधन आराधो, मोह-तनो दु:ख हानो॥

हे जीव! सुन! तेरे मरण के समय सर्व कुटुंबीजन रोने लगते हैं और तुझे भी रुलाकर अपशकुन करते हैं—इसका विचार तू क्यों नहीं करता? अब परगति के लिये प्रयाण करते समय तुम अंतर में धर्मध्यान धारण करो, चारों आराधनाओं को आराधो और मोह का दु:ख नष्ट करो!

(53) होय नि:शल्य तजो सब दुविधा, आतम-राम सु ध्यावो,
अब पर-गति को करहु पयानो, परम-तत्त्व उर लावो।
मोह-जाल को काटो प्यारे अपनो रूप विचारो,
मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो॥

नि:शल्य होकर सब दुर्विकल्पों को छोड़ दो और आतमराम को ध्याओ! अब परम तत्त्व को हृदय में धारण करके परगति की ओर प्रयाण करो। हे प्रिय मुमुक्षु! अब मोहजाल को काट दो और अपने स्वरूप का विचार करो। मृत्यु तुम्हारा मित्र-उपकारी है, ऐसा निश्चय अंतर में धारण करो।

(54) 'मृत्यु-महोत्सव-पाठ' को, पढ़े-सुने बुद्धिवान,
सरधा धर नित सुख लहें, 'सूरचंद' शिव-धान।
पंच उभय नव एक शुभ, संवत सो सुखदाय,
अश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥

सूरचंदजी कवि कहते हैं कि—जो बुद्धिवान इस मृत्यु-महोत्सव पाठ को पढ़ेंगे, सुनेंगे और श्रद्धा करेंगे, वे सदा सुखी होंगे और शिवथान (मोक्ष) प्राप्त करेंगे। संवत् 1955 में आश्विन कृष्णा सप्तमी के शुभ दिन इस मृत्यु-महोत्सव पाठ की रचना की।....यह पाठ भव्य जीवों को आराधना के प्रति उत्साहित करे!

गुजरात के प्रवचन

सौराष्ट्र का मंगल-विहार पूर्ण करके स्वामीजी अहमदाबाद होते हुए गुजरात में पधारे। सबसे पहले स्वामीजी के प्रवचन दहेगाम में हुए थे, जो आप पिछले अंक में पढ़ चुके हैं। प्रथम वैशाख शुक्ला छठ से द्वितीय वैशाख कृष्णा एकम तक (रखियाल से चोरीवाड तक) के प्रवचनों का रसास्वादन आप इस अंक में करेंगे। बड़ा शहर हो या छोटा-सा गाँव, —स्वामीजी की चैतन्यरस की धारा तो सर्वत्र समानरूप से बहती थी।

सम्यग्दृष्टि का अत्यंत मधुर चैतन्य-स्वाद

[रखियाल-स्टेशन, प्रथम वैशाख शुक्ला 6-7 समयसार गाथा-97]

दहेगाम के बाद पूज्य स्वामीजी रखियाल पधारे। रखियाल जैसे छोटे गाँव में भी सुंदर सुशोभित जिनमंदिर है। जिनेन्द्र-दर्शन और स्वागत के पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने मंगल-प्रवचन द्वारा चैतन्यतत्त्व का स्मरण करके उसकी महिमा समझायी। दोपहर को समयसार गाथा 97वीं पर प्रवचन हुआ।

स्वामीजी ने कहा कि—जीव देह से भिन्न चैतन्यवस्तु है, उसका स्वाद अतीन्द्रिय आनंदरूप अत्यंत मधुर चैतन्यरस है, लेकिन रागादि के कर्तृत्व में रुक जाने से अज्ञानी को अनादि काल से अपने चैतन्य का सच्चा स्वाद नहीं आया और रागादिभाव के आकुलतारूप स्वाद का ही उसे अनुभव होता है। भाई, अपने चैतन्य का सच्चा स्वाद किसप्रकार आये, वह बात संत तुझे बतलाते हैं। सर्वप्रथम राग के कर्तृत्वरहित जो ज्ञानस्वभाव है, उसे पहिचानना चाहिये, तभी चैतन्य का सच्चा स्वाद आता है।

आत्मा को बाह्य में अन्य कोई शत्रु या मित्र नहीं है। अपने आत्मा का विपरीत

अज्ञानभाव ही शत्रु है और अपने स्वभाव का सम्यक्भाव ही मित्र है। अन्य किसी को शत्रु या मित्र मानना, वह भ्रम है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव सीमंधर परमात्मा के पास जाकर जो संदेश लाये थे, वही समयसार में है, वही यहाँ कहा जा रहा है। आत्मा को संतों ने भगवान कहकर संबोधित किया है, भगवान! तू तो अनंत ज्ञान और अनंत आनंदस्वरूप है, तू राग जितना नहीं, रागादि का कर्तृत्व, वह तेरा स्वरूप नहीं है, तेरी चैतन्य-किरण में से राग नहीं निकलता। रागरहित चैतन्यकिरणों से प्रकाशमान ज्ञानसूर्य तू है। चैतन्य और राग की एकता नहीं, इसलिये कर्ता-कर्मपना भी कभी नहीं—ऐसा भेदज्ञान होने पर राग का कर्तृत्व छूटकर चैतन्य का रागरहित अत्यंत मधुर स्वाद जीव को अनुभव में आता है। सम्यग्दृष्टि को ही ऐसा स्वाद आता है और चैतन्य के इस अत्यंत मधुर स्वाद के समक्ष समस्त जगत के विषय नीरस लगते हैं; चैतन्य की शांति के समक्ष राग की आकुलता प्रज्वलित अग्नि के समान प्रतीत होती है।

अरे, चैतन्य-वैभवसंपन्न आत्मा, उसे रागवाला और शरीरवाला मानकर जीव भव-दुःख में भ्रमण करते हैं। श्री अमृतचंद्राचार्य स्वामी पुरुषार्थसिद्धिउपाय में कहते हैं कि:—

एवमयं कर्मकृतैः भावैः असमाहितोपि युक्त इव प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।—इसप्रकार यह आत्मा कर्मकृत (शरीर तथा रागादि) भावों से असंयुक्त होने पर भी बालिश (अज्ञानी) जीवों को वह रागादि से संयुक्त जैसा प्रतीत होता है, उनका यह मिथ्या प्रतिभास ही वास्तव में भव का बीज है।

राग का कषायवाला स्वाद और चैतन्य का अत्यंत मधुर निराकुल स्वाद, इन दोनों की भिन्नता को न जानते हुए अज्ञानी उसे एकमेक ही अनुभव करता है अर्थात् विकारी स्वाद का ही अनुभव करता है, इसलिये वह अज्ञानभाव से विकल्प ही करता है। जब भेदज्ञान द्वारा राग से भिन्न अपने अनादिनिधन अतीन्द्रिय मधुर चैतन्य-स्वाद को जानता है, तब ज्ञान से पृथक् ऐसे कषायरस को वह अपने से अत्यंत भिन्न जानता है, अर्थात् उसका (विकल्प का) वह कर्ता नहीं होता। इसप्रकार ज्ञान द्वारा ही विकल्प का कर्तृत्व छूटता है।

अरे, मैं कौन हूँ और मेरा स्वरूप क्या है? किसमें मेरा हित है और किस कारण मैं दुःखी हुआ? इसका हे जीव! तू विचार तो कर। तेरे चैतन्यतत्त्व को दूसरे से संबंध नहीं है और

वास्तव में उसे राग से भी संबंध नहीं है। ऐसे भिन्न चैतन्यतत्त्व को तू देख, उसमें आनंद का स्वाद है।

अहो, चैतन्यतत्त्व ऐसा सुंदर, परम आनंदरस से परिपूर्ण, उसमें राग की आकुलता कैसे शोभा देगी? चैतन्यभाव की राग के साथ एकता कैसे होगी? जैसे सज्जन के मुँह पर दुर्गंध का लेप शोभा नहीं देता; उसीप्रकार सत् ऐसे चैतन्य के ऊपर राग का लेप शोभा नहीं देता; चैतन्य में राग का कर्तृत्व नहीं होता।—ऐसी भिन्नता को जो जानता है, वह ज्ञानी जीव अपने चैतन्यभाव में राग के किसी अंश को नहीं मिलाता, इसलिये ज्ञान में राग का कर्तृत्व रंचमात्र भी नहीं है। ऐसे आत्मा के ज्ञान बिना पुण्य करके भी जीव किंचित् सुख न पा सका। कहाँ से पाये? पुण्य के राग में कहाँ सुख था कि उसे ले सके? सुख चैतन्यस्वभाव में है, उसे जाने—उसका अनुभव करे, तभी चैतन्यसुख का स्वाद आता है और तभी रागादि का कर्तृत्व छूट जाता है—ऐसी जिसकी दशा हुई है, वही सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी है।

जो राग का कर्ता होगा, वह रागरहित चैतन्य का स्वाद नहीं ले सकेगा। और राग से भिन्न चैतन्य का स्वाद जिसने चख लिया, वह कभी राग का कर्ता नहीं होगा। एक सूक्ष्म विकल्प के स्वाद को भी वह ज्ञान से भिन्न जानता है। इसलिये कहा है कि—

करे करम सोई करतारा, जो जाने सो जाननहारा।
जाने सो करता नहिं होई, कर्ता सो जाने नहीं कोई॥

चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर जो ज्ञानरूप परिणमित हुआ, उसके ज्ञान-परिणमन में राग का कर्तृत्व नहीं है, और जो राग का कर्ता होता है, वह राग से भिन्न अपने चैतन्यस्वरूप को जानता नहीं है।

आत्मा अनादि-अनंत चैतन्यरसरूप ही अनुभव में आता है; जगत के अन्य रसों से विलक्षण दूसरी जाति का ही यह चैतन्यरस है। रागादि कषायों का रस कड़वा यानी आकुलतामय है और यह चैतन्यरस अत्यंत मधुर-शांत-निराकुल है। ज्ञानी अपने चैतन्यस्वाद को दूसरों से पृथक् करके उसका वेदन करते हैं। अहा! ऐसा शांत-मधुर आनंदधाम मेरा चैतन्यस्वाद!—जिसको मैंने पूर्व काल में कभी चखा नहीं था और इसलिये मैं दुःखी था। आत्मा के आनंद का स्वाद लेकर अब मैं सुखी हुआ।

'सुखी जगत में संत.....' सम्यक्त्वी अपने अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लेते हैं, उन्हें दुनिया के पास से कुछ लेना नहीं है, अन्य किसी वस्तु में से सुख लेना नहीं है, वे संत ही जगत में सुखी हैं। जो परवस्तु में से सुख लेना चाहते हैं, वे तो दु:खी हैं और पर के पास से भीख माँगनेवाले भिखारी हैं। सम्यक्त्वी अपने चैतन्यवैभव का स्वामी एवं बड़ा बादशाह है, वह जगत से निस्पृह है। मेरा चैतन्यसुख मुझमें है, मुझे जगत के पास से कुछ लेना नहीं है।

अज्ञानी को अपने चैतन्यरस का विस्मरण हो गया है तथा राग का रस लेने की आदत पड़ गई है। जैसे उमराला के सुंदरजी रूपा भावसार को नाक के मैल का स्वाद लेने की आदत पड़ गई थी। उसीप्रकार चैतन्य के सुंदर रूपवाला 'भावसार'—सारभूत जिसका स्वभाव है—ऐसा आत्मा अपने को भूलकर मैं रागी हूँ, मैं द्वेषी हूँ, मैं शरीरवाला हूँ—ऐसा मानकर अज्ञान से नाक के मैल समान पुण्य-पाप के स्वाद में रुका हुआ है, यह तुझे शोभा नहीं देता। वह जीव का पद नहीं है। जीव का पद क्या है ? वह बतलाते हुए समयसार गाथा 203 में कहा है कि—

जगत में जो अनेक प्रकार के द्रव्य और भाव हैं, उनमें भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव के साथ एकरूप जो अनुभव में आता है, वहाँ आत्मा का निवासस्थान होने से निजपद है। लेकिन ज्ञानस्वभाव से भिन्न, अनेक, क्षणिक, विकारी भाव हैं, वे स्वयं अस्थिर हैं, वे आत्मा का निजपद नहीं। ऐसा जानकर हे जीव! त्वरा से निजपद को ग्रहण कर और पर पद को छोड़। परमार्थरसरूप से स्वाद में आता हुआ चैतन्यमात्र भावरूप निजपद ही आस्वादन करनेयोग्य है। विकार का स्वाद अनंत काल से लिया, परंतु उससे जीव को शांति नहीं मिली। पाप हो या पुण्य, उसके फल में नरक हो या स्वर्ग, उसमें कहीं आत्मा की शांति नहीं है, वह कहीं आत्मा का निजपद नहीं है; निजपद का स्वाद तो आनंदरूप ही होता है।

भाई! तेरे आत्मा का स्वाद तो ज्ञानमय है। ज्ञानरसरूप आत्मा को स्वाद में ले। वह तेरा निजपद है... वही आनंददायक है। आनंदभाव से परिपूर्ण तेरा निजपद है, उसे छोड़कर तू राग से मलिन भावों के वेदन में कहाँ रुक गया है ? अरे, चैतन्यप्रभु पुण्य-पाप के विकृतभावों में रुक जाये, वह शोभा नहीं देता। कहाँ चैतन्य का अनुपम पद! और कहाँ रागादि के कलंक भाव! अरे, इन दोनों में एकता कैसी ? 'चैतन्य मैं' ऐसे अनुभव के अतिरिक्त 'क्रोधी मैं—रागी

मैं—पापी मैं'—ऐसा जो अनुभव करता है, वह कहीं आत्मा को शोभा देता है ? नहीं। इसलिये हे भाई! एक ज्ञान से ही बना हुआ ही तेरा परम पद है—उसमें विपदा नहीं। ऐसे निजपद के समक्ष समस्त परपद तो अपद भासित होते हैं। ऐसे ज्ञानपद का अनुभव, वह मोक्ष का उपाय है।

❋ ❋ ❋

[वैशाख शुक्ला सप्तमी को दोपहर का प्रवचन रखियाल से तीन-चार मील दूर खानपुर में हुआ था। खानपुर में दिगम्बर जैन मंदिर है। पूज्य स्वामीजी के आगमन से वहाँ के जैनों तथा अजैनों में अपूर्व उल्लास दिखायी देता था। प्रवचन में स्वामीजी ने सुगम शैली से आत्मा का स्वरूप समझाया था। प्रवचन के पश्चात् भक्ति भी खानपुर में हुई थी।]

अनंतकाल से संसार में भ्रमण करते हुए आत्मा को अपना सच्चा स्वरूप समझ में नहीं आया। देह से भिन्न आत्मा मैं कौन हूँ—ऐसा जो जाने, वह सच्चा मनुष्य कहलाता है। दो हाथ-दौ पैर-दो आँखें आदि से कहीं वास्तव में मनुष्यपना नहीं कहा जाता। क्योंकि दो हाथ-दो पैर तो बंदर को भी हैं—इसके अलावा एक लंबी पूंछ भी है। मनुष्य की विशेषता तो विवेक में है। विवेक अर्थात् स्व-पर का भेदज्ञान। आत्मा क्या है और भिन्न वस्तु क्या है ? उसे पहचानकर विवेक करना चाहिए। १६ वर्ष की उम्र में श्रीमद् राजचंद्रजी कहते हैं कि—आत्मा कौन है और उसका वास्तविक स्वरूप क्या है ? उसका हे जीवो! तुम विचार करो। हंस उसे कहते हैं—जिसकी चोंच में दूध और पानी को पृथक् करने का सामर्थ्य हो। जिसकी चोंच में दूध और पानी को पृथक् करने की शक्ति न हो, उसे हंस नहीं कहते। इसीप्रकार जिसके ज्ञान में राग और ज्ञान को भिन्न-भिन्न करने का सामर्थ्य है, वही वास्तव में चैतन्य-हंस है, वही विवेकी है।

जैसे—हंस तो सच्चे मोती चुगता है, परंतु कौए की दृष्टि माँस के टुकड़े पर रहती है; वह सच्चे मोती को छोड़कर माँस को ग्रहण करता है। युद्ध में विशाल हाथी का मस्तक क्षत-विक्षत हो जाता है, तब उसमें मुक्ताफल के मोती और माँस दोनों पड़े होते हैं। वहाँ कौआ तो मोती को छोड़कर माँस ग्रहण करता है; लेकिन हंस तो सच्चे मोती का चारा चरता है। उसीप्रकार आत्मा में सच्चे मोती जैसा शुद्ध चैतन्यस्वभाव और रागादि विकारभाव होने पर भी, ज्ञानी तो उसमें विवेक करके रागरहित चैतन्यस्वभाव को ग्रहण करके उसका स्वाद लेते हैं और अज्ञानी आत्मा को रागादि के साथ एकमेक करके उसका अनुभव करते हैं।

चैतन्यतत्त्व ऐसा महान-गंभीर है कि राग में-विकल्प में उसे नहीं रखा जा सकता; वह तो सिंहनी के दूध की भाँति स्वर्णपात्र समान ज्ञान की अंतरपरिणति में ही रखा जा सकता है। ज्ञान ही अंतर्मुख होकर चैतन्यस्वभाव को ग्रहण कर सकता है अर्थात् अनुभव कर सकता है। वस्तु को देखना हो तो पहले उसके ऊपर प्रकाश डालें, तब वह दृष्टिगोचर होती है; उसीप्रकार आत्मा को देखने के लिये अंतर में ज्ञान के प्रयोग का प्रकाश डालने से वह ज्ञात होता है। अन्य प्रकार से-विकल्पों द्वारा वह जानने में नहीं आता।

[खानपुर में प्रवचन और भक्ति के बाद स्वामीजी पुनः रखियाल पधारे। और दूसरे दिन प्रातःकाल तलोद की ओर प्रस्थान किया।]

ज्ञायकभाव की सन्मुखता ही अमिट मंगल है।

पूज्य स्वामीजी के तलोद पधारने पर तलोद और गुजरात के अनेक मुमुक्षुओं ने स्वामीजी का उल्लासपूर्ण स्वागत किया। श्री ब्रह्मचारी केशवलालजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा कि हम सबका सद्भाग्य है कि—चैतन्य की ऐसी बात का श्रवण हमको मिला है। जिनमंदिर में दर्शन-पूजन के बाद मंडप में मांगलिक सुनाते हुए स्वामीजी ने कहा कि—

पहली गाथा में सर्व सिद्धों को वंदन-आदर-सत्कार करके अर्थात् अनंत सिद्ध भगवंतों को ज्ञान में स्वीकार करके, अपूर्व मंगल किया है; और छठवीं गाथा में ज्ञायकस्वभाव बतलाया है। छट्ठी का (भाग्य का) लिखा जिसप्रकार मिटता नहीं है, उसीप्रकार छट्ठी गाथा में कहे हुए ज्ञायकस्वभाव की जिसे प्रतीति हो गई, उसकी मोक्षदशा मिटती नहीं है—ऐसा यह छट्ठी का अमिट लेख है।

ज्ञायकभावरूप आत्मतत्त्व है, उसमें शरीर-मन-वाणी नहीं और पुण्य-पाप के भाव भी नहीं हैं। ऐसा ज्ञायकस्वभाव, वह उत्कृष्ट मंगल है; उसके सन्मुख हुई पर्याय भी अपूर्व मंगल है। उसमें प्रमत्त-अप्रमत्त दशा के भेद के विकल्प नहीं हैं।

भगवान के पास से प्रत्यक्ष श्रवण किया हुआ और स्वयं अनुभव किया हुआ ज्ञानानंदस्वभावी तत्त्व बतलाते हुए वीतरागी मुनिराज आत्मा के निज-वैभव से कहते हैं

कि—ऐसे ज्ञायकतत्त्व को एक बार लक्ष में लो। जिसमें गुणस्थानभेद के विकल्प नहीं हैं—ऐसे चैतन्य में प्रवेश करने से विकल्पातीत अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव होता है। ऐसी उपासना-श्रद्धा, वह मंगल है और उसका श्रवण भी मंगल है।

अहा, स्वयं ऐसा तत्त्व है, उसकी महिमा लक्ष में लेते ही सांसारिक विकल्प एक ओर रह जाते हैं। इस चैतन्यस्वभाव के सन्मुख होकर उसके श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करने से जो मंगल हुआ है, वह कभी भी न बदले ऐसा अप्रतिहत मंगल है। संसार में लोग नये गृह में प्रवेश और विवाह आदि को मंगल-कार्य मानते हैं, लेकिन वे क्षणिक हैं, नाशवान हैं, वे कहीं यथार्थ मंगल नहीं हैं। चैतन्य की एकाग्रता और उसके साथ लग्न करने से (उसमें उपयोग को लगाने से) जो मंगल हुआ, वह महा आनंदरूप है, वह कभी मिटता नहीं है। ऐसे ज्ञायकस्वभावी आत्मा का स्वीकार—श्रद्धा-ज्ञान-बहुमान-श्रवण वह अमिट मंगल है।

दोपहर को समयसार गाथा 97 पर प्रवचन होते थे। स्वामीजी के प्रवचन में स्थानीय और आसपास के हजारों मुमुक्षुओं ने लाभ लिया था। शांतरस से भरपूर अध्यात्म-प्रवचन का श्रवण करके श्रोतागण आनंद-विभोर हो जाते थे।

इस संसार में अन्य गतियों की अपेक्ष दुर्लभ ऐसी यह मनुष्य गति पाकर, चैतन्यस्वरूप अपना आत्मा क्या वस्तु है, उसे जो जीव पहचानते हैं, उनका मनुष्यजन्म सफल है। इससे रहित मनुष्यजन्म में और पशु में कोई अंतर नहीं है। पशु भी अपना जीवन विषय-कषाय में बिताता है, और मनुष्य होकर भी विषय-कषाय में जीवन व्यतीत करे तो दोनों में क्या अंतर रहा? अरे, पुण्य-पाप से भिन्न मेरा अंतरतत्त्व क्या है कि जो मुझे शांति और आनंद प्रदान करता है!—ऐसा विचार करना चाहिये। जीव ने पुण्य-पाप अनंत बार किये, तथापि जीव को किंचित् शांति प्राप्त नहीं हुई। उस पुण्य-पाप के कर्तृत्व रहित मेरा चैतन्यतत्त्व है—जिसका स्वाद मधुर चैतन्यरस से भरपूर है। पुण्य-पाप के आकुलतामय स्वाद से चैतन्य का स्वाद बिलकुल भिन्न प्रकार का है। पुण्य-पाप की मृगमरीचिका में अनंत काल तक दौड़ने पर भी उसमें शांति प्राप्त नहीं हुई। अंतर में शांतरस से भरपूर चैतन्य सरोवर-उसमें उपयोग को लगाने से अनमोल शांति और इंद्रियातीत आनंद प्राप्त होगा।

भाई, दुनिया दुनिया की जाने... तू तो अपना हित कर ले। ऐसा मनुष्य-जन्म प्राप्त करके

अपने चैतन्य के श्रद्धा-ज्ञान तो कर कि शांति मेरे आत्मा में ही है; मेरा आत्मा राग-द्वेष रहित परम शांतिस्वरूप है। अमूल्य सुगंधित कस्तूरी अपनी नाभि में होते हुए भी, जरा सी आहट पाकर भड़कनेवाले हिरन को अपनी कस्तूरी का विश्वास नहीं होता और बाहर ढूँढ़-ढूँढ़कर हैरान होता है; उसीप्रकार रागरहित अतीन्द्रिय शांति का समुद्र आत्मा स्वयं है, किंतु किंचित् पुण्य का शुभराग करे, वहाँ उसे ऐसा लगता है कि मैंने बहुत कर लिया।—ऐसा माननेवाले अज्ञानी जीव को राग से और पुण्य से पार अपने गंभीर चैतन्यस्वभाव के अनंत सुख का विश्वास नहीं होता और बाह्य-राग में सुख मानकर उसके पीछे दौड़-दौड़कर दुःखी होता है। अनादिकाल से राग और पुण्य में ही मग्न रहा, तथापि शांति किंचित् भी प्राप्त नहीं हुई—कहाँ से प्राप्त हो? मृगजल जैसे विषयों में और रागादिभावों में शांति-जल कहाँ से प्राप्त हो? अंतर में जहाँ शांति का सरोवर भरा है, उसमें दृष्टि करने से अपूर्व शांति का अनुभव होता है, और पुण्य-पाप का कर्तृत्व छूट जाता है। तब प्रतीति होती है कि अरे! चैतन्य का स्वाद राग से बिलकुल भिन्न प्रकार का है। अमृत और विष जैसी भिन्नता ज्ञान और राग के स्वाद में है। चैतन्य के स्वाद में राग की आकुलता का स्वाद कैसा? और राग के स्वाद में चैतन्य की शांति कैसी? दोनों का स्वाद भिन्न-भिन्न है।—ऐसा भेदज्ञान करनेवाला जीव चैतन्य के स्वाद का अनुभव करता हुआ राग को अपने से भिन्न जानकर उसका कर्तृत्व छोड़ देता है और अंतर में उसे चैतन्य के अपूर्व आनंदरस की धारा प्रवाहित होती है। अहा! गुरु ने हमें आनंदरस का प्याला पिलाया है!

जीव को अपने चैतन्यस्वभाव का ज्ञान होने पर वह रागादि समस्त परभावों का अकर्ता हो जाता है, क्योंकि राग से भिन्न चैतन्य का रसास्वादन उसे हो गया है; अहा, चैतन्य के अत्यंत मधुर आनंदमय महास्वाद के समक्ष जगत के समस्त स्वाद अत्यंत नीरस प्रतीत होते हैं। रागादिभाव कषायले तथा आकुलतरसवाले हैं, उनका स्वाद धर्मी नहीं लेते। धर्मी का ज्ञान शांतरसमय है—वह आकुलता का स्वाद नहीं ले सकता। धर्मी जीव सदैव अपना मधुर वीतरागी चैतन्यस्वाद को ही लेते हैं; उसी का आत्मा में अनुभव करते हैं। शरीर की रचना, यह तो मृतक कलेवर-जड़ अचेतन है, उसका जीव उपभोग नहीं करता; राग का स्वाद अग्नि की भट्ठी के समान आकुलतारूप है, उस स्वाद को ज्ञानी अपने स्वाद से भिन्न जानते हैं और रागरहित अपने शांतरस का आस्वादन करते हैं।—ऐसे जीव ज्ञानी हैं, धर्मी हैं, मोक्षमार्गी हैं। अहा, चैतन्यपद जो अनंत शांतिस्वरूप, वह मैं हूँ—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। ऐसे शांतरस

के वेदन में कषायभावों का समावेश नहीं हो सकता, उससे भिन्न शांतरस को ही ज्ञानी सदैव अपना स्वाद जानकर अनुभव करते हैं।

अरे भाई! चैतन्य का स्वाद और कषाय का स्वाद, इन दोनों के बीच का भेद तू पहचान तो सही! जैसे हंस दूध और पानी को पृथक् करके दूध का स्वाद लेता है, तो तू चैतन्य का शांत-वीतरागी-आनंदस्वाद और रागादि कषायभाव का अशांत-विकारी-दु:खमयस्वाद,—इन दोनों के स्वाद को भिन्न करके अपने चैतन्यस्वाद को ग्रहण कर। पुण्य-पाप के विषमय स्वाद के कारण तू अनंत काल से संसार में दु:खी हुआ है; अब अपने भिन्न चैतन्य जाति को जानकर उसके अमृत का स्वाद ले।

धर्मी जीव अपने चैतन्यस्वाद के अनुभव से ऐसा जानते हैं कि मेरे चैतन्यभाव को राग के या दु:ख के साथ कारण-कार्यपना नहीं है, उसके साथ स्व-स्वामीपना भी नहीं है। चैतन्यवीर्य ऐसा नहीं है कि राग की रचना करे। चैतन्यभाव की स्वीकृति में आत्मा की अनंत शक्ति का निर्मल परिणमन प्रारंभ हो गया है। अकेले चैतन्यस्वाद में आत्मा के अनंत गुण का निर्मल-वीतरागी-शांतरस सम्मिलित है; ऐसे अत्यंत मधुर चैतन्यस्वादवाला आत्मा है, उसे पहिचानने से आत्मा रागादि परभावों का अकर्ता होकर आस्रवों को छोड़कर, मुक्त हो जाता है।

[तलोद का प्रवचन-समाप्त]

अनुभव

प्रश्न—अनुभव द्रव्य का है या पर्याय का?

उत्तर—अनुभव तो पर्याय का है किंतु अनुभव में अकेला द्रव्य अथवा अकेली पर्याय नहीं है, किंतु स्वसन्मुख होकर पर्याय द्रव्य के साथ तद्रूप हुई है, और द्रव्य-पर्याय के बीच भेद नहीं रहा—ऐसी जो दोनों की अभेद अनुभूति, वह अनुभव है। द्रव्य-गुण नित्य सामान्य हैं, वर्तमान व्यक्त पर्याय-विशेष को अंतर्मुख करना है; अत: द्रव्य-पर्याय के बीच भेद रहे, तब तक निर्विकल्प अनुभव नहीं होता।

तलोद की तत्त्वचर्चा

❀ संसार अर्थात् क्या ?

आत्मा का मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष, वह संसार है। उसमें भी 'रागादिभाव जितना ही मैं हूँ'—ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, वही मुख्य संसार है।

❀ आत्मा और कर्म की मिश्रदशा वह संसार है ?

नहीं; आत्मा की दशा आत्मा में है, कर्म की दशा पुद्गल में है, दोनों की दशाएँ भिन्न-भिन्न हैं। दोनों की एक मिश्रदशा नहीं है।

❀ स्त्री-पुत्र-परिवार आदि को छोड़ देने से तो संसार छूट जाता है न ?

नहीं; वे परद्रव्य तो पृथक् ही हैं; वह मेरे हैं—ऐसी मान्यता, वह संसार का मुख्य कारण है। इस मान्यता को छोड़े बिना संसार नहीं छूटता। पर से भिन्न और रागादि से रहित चैतन्यस्वभाव कैसा है, उसको लक्ष में लेकर अनुभव करने से सम्यक्त्वादि होते हैं अर्थात् अज्ञान छूट जाता है और रागादि से भी आत्मा का चैतन्यभाव पृथक् हो जाता है—यही संसार छोड़ने और मोक्षमार्ग ग्रहण करने की रीति है।

सम्यक्त्वसहित मुनिदशा की परम महिमा

❀ साधुपना कैसा होता है ?

अहा, साधुपना तो अंतर को अलौकिक वीतरागी दशा है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के उपरांत वीतरागी चारित्र प्रगट हुआ है, तीन प्रकार के कषाय छूट गये हैं, आत्मा अतीन्द्रिय आनंद की प्रचुर दशा में झूल रहा है, देह के ऊपर वस्त्रादि की भी वृत्ति नहीं है, संपूर्ण दिगंबर हैं, वे उद्दिष्ट आहार ग्रहण नहीं करते, क्षण-क्षण में जिन्हें निर्विकल्प दशा होती है।—ऐसे भगवान मोक्षमार्गी मुनिवर हैं। अहो, ऐसे मुनियों के चरणों में नमस्कार हो। वे तो पंच परमेष्ठीपद में विराजमान भगवान हैं।

अरे, मुनिदशा की महिमा की जगत को खबर नहीं है। साधु तो जगत में चलते-फिरते सिद्ध हैं। अहा, ऐसे साधु को कौन नहीं मानेगा ? साधु तो परमेष्ठी

भगवान हैं, उन्हें कौन नमस्कार नहीं करेगा ? परंतु ऐसे सच्चे साधु दिखायी न दें तो चाहे जिसे साधु नहीं माना जा सकता। कुसाधु को साधु मानने से तो सच्चे साधु का अनादर हो जाता है। अत: साधु-मुनिराज का यथार्थ स्वरूप जानकर भक्तिपूर्वक उन्हें मानना चाहिये।

राग से भिन्न चैतन्यवस्तु क्या है, उसकी प्रतीति बिना मात्र शुभराग से साधुपना हो जाये—ऐसा नहीं है। साधुपना तो सम्यग्दर्शन के उपरांत चारित्र की प्रचुर वीतरागी दशा में होता है। ऐसे साधुपने के बिना मोक्ष नहीं सधता।

❀ सोनासण में चैतन्य की सुनहरी बात ❀

प्रात:काल जिनमंदिर में दर्शन करके तलोद से सोनासण आते हुए मार्ग में प्रांतिज शहर के जिनमंदिर में भाववाही जिनभगवंतों के दर्शन किये। यहाँ जमीन में से एक प्राचीन कलात्मक खड्गासन सुंदर जिनप्रतिमा निकली है। उसकी वीतरागी शांत मुद्रा दर्शनीय है। स्वामीजी प्रांतिज से सोनासण पधारे। शांत ग्राम्य-वातावरण में पूज्य स्वामीजी का अधिक समय स्वाध्याय में व्यतीत होता था। यहाँ समयसार की 97वीं गाथा के 57वें कलश पर प्रवचन हुआ था। अज्ञान के और ज्ञान के स्वाद में कितना बड़ा अंतर है, वह इसमें समझाया गया है।

जीव स्वयं ज्ञानस्वरूप है। स्वयं ज्ञानस्वरूप होने पर भी, मानो राग का स्वाद ही स्वयं हो—इसप्रकार अज्ञानी जीव अपने को रागरूप अनुभव करता है। धर्मी जीव ज्ञान द्वारा हंस की तरह विवेक करके राग से भिन्न ज्ञान का स्वाद लेता है। चैतन्यस्वाद लेनेवाले धर्मी जीव किसी रागादि भाव को कदापि अपने रूप नहीं करता। रागादि को अपने चैतन्यभाव से बिलकुल भिन्न ही जानता है।

अरे जीव! चैतन्यस्वादवाले अपने आत्मा को जाने बिना अनंत काल से शुभ-अशुभ राग के स्वाद को ही अपना मानकर तूने चारगति में भ्रमण किया है। शुभराग से, व्रतादि करके, उस राग को अपना स्वरूप मानकर, उसे धर्म मानकर तूने संसार में भ्रमण किया, तथापि किंचित् सुख प्राप्त न कर सका। राग से भिन्न प्रकार के चैतन्यस्वाद को जाने बिना सुख या धर्म प्रगट नहीं होता। अहो, चैतन्य की शांति और सुख का स्वाद कैसी अचिंत्य वस्तु है—वह जीव ने पहले कभी भी लक्ष में नहीं लिया। जहाँ ज्ञान प्रगट हुआ और चैतन्य के अत्यंत मधुर

वीतरागी शांतरस का आस्वादन किया, वहाँ धर्मी को अब रागादि का विकृत स्वाद स्वप्न में भी अपना भासित नहीं होता। इसलिये उसका ज्ञान रागादि का कर्ता भी नहीं है और भोक्ता भी नहीं है। उसका ज्ञान तो अत्यंत मधुर चैतन्य के आनंदरस का ही उपभोग करनेवाला है। ऐसे आनंद का उपभोग करनेवाला सम्यग्दर्शन अपूर्व वस्तु है। उसके बिना जीव को कभी सच्चा आनंद प्राप्त नहीं होता। लाखों-करोड़ों में किसी विरले को ही प्राप्त हो—ऐसी यह दुर्लभ वस्तु है; दुर्लभ है, तथापि जीव का स्वभाव है; जो जीव करना चाहे, वह कर सकता है। अभी भी ऐसे स्वाद का आस्वादन करनेवाले जीव हैं।

जैसे श्रीखंड के रस में गृद्ध हुआ लोलुपी जीव श्रीखंड में दही के खट्टे और शक्कर के मीठे स्वाद को नहीं जानता; उसीप्रकार रागरस में मग्न हुआ अज्ञानी जीव चैतन्य के मीठे आनंदमय स्वाद को और राग के खट्टे-दु:खमय स्वाद का भिन्न अनुभव नहीं करता; राग का अनुभव करके मानता है कि मैं आत्मा के चैतन्यस्वाद को भोगता हूँ—ऐसा वह अज्ञान के कारण मानता है। ऐसे अज्ञानी को आचार्यदेव पशु का उदाहरण देकर समझाते हैं कि—जैसे लड्डू और घास दोनों को मिश्ररूप में खानेवाले हाथी को लड्डू के स्वाद की खबर नहीं है, उसीप्रकार अज्ञानी को चैतन्य की ओर के आनंदवेदन की खबर नहीं है और पुद्गलकर्म की ओर के रागादिभावों के स्वाद को वह अपना स्वाद मानकर उसका वेदन करता है। ऐसे अप्रतिबुद्-अज्ञानी को आचार्यदेव भेदज्ञान करके समझाते हैं कि हे दुरात्मा! हे आत्मघाती! जिसप्रकार परम अविवेक से खानेवाले हाथी आदि पशु सुंदर आहार को तृण सहित खाते हैं, उसीप्रकार चैतन्य के सुंदर अनाकुल स्वाद को राग के साथ मिश्र करके अनुभव करनेवाली बुद्धि को छोड़... छोड़! भगवान ने आत्मा को पुद्गल से बिलकुल भिन्न उपयोगस्वरूप कहा है। जड़ और चेतन में कभी एकत्व नहीं है, उसीप्रकार राग और उपयोग में भी एकता नहीं है। 'उपयोग' ऐसा जानता है कि यह राग है, मैं इसे जाननेवाला हूँ। राग मैं नहीं, परंतु राग को जाननेवाला, राग से भिन्न हूँ।—इसप्रकार राग से भिन्न उपयोगस्वरूप आत्मा को जानकर उसके आनंद का स्वाद लेकर हे जीव! तू आनंदित हो... सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। आनंदमय स्वद्रव्य ही मैं हूँ, इसप्रकार उज्ज्वल चित्त द्वारा आत्मा को अनुभव में ले।—ऐसा अनुभव ही मोक्षमार्ग है।●●

छोटे से झींझवा गाँव में चैतन्य की बड़ी बात

वैशाख शुक्ला 11 के प्रातःकाल स्वामीजी सोनगढ़ से एक मील दूर झींझवा गाँव में पधारे। गाँव छोटा होने पर भी स्वागत-समारोह उमंगपूर्वक मनाया गया। आज का प्रवचन भी सुंदर था। जिनमंदिर में दर्शन के पश्चात् स्वामीजी ने मंगलाचरण में समयसार की प्रथम गाथा द्वारा अनंत सिद्ध भगवंतों का स्मरण करके उनकी आत्मा में स्थापना की। अहो, ऐसा शुद्धस्वरूप ज्ञान में लेना, वह अपूर्व मंगल है। पश्चात् दूसरी गाथा द्वारा स्वसमय का स्वरूप दर्शाया। अपनी सम्यक्त्वादि निर्मल पर्याय में स्थित जीव अर्थात् उस पर्यायरूप परिणमित जीव स्वसमय है, और स्वसमयपना वह मंगल है। इसके अतिरिक्त रागादिभावों को अपना स्वरूप मानकर उनमें जो स्थित है, वह परसमय है।

स्वसमयरूपी निजगृह, उससे बाह्य ऐसे जो रागादिभाव, वे तो परघर हैं। स्वगृह को त्यागकर जो परघर में भ्रमण करता है, उसे जो कुचाल कहा जाता है। भाई! स्वसमयपना सुंदर है, सुखरूप है, वह तुझे शोभा देता है। ऐसे स्वसमयपने की उत्पत्ति रागादि परभावों के सेवन द्वारा नहीं होती। (चाँपा का दृष्टांत)—चाँपा जैसा पुत्र अपनी कुलीन माता के उदर से ही जन्म लेता है; जहाँ-तहाँ नहीं। उसीप्रकार आनंद की दशारूपी चाँपा कहीं राग के गर्भ से उत्पन्न होता होगा?—नहीं; राग के सेवन से चैतन्य का चाँपा जन्म नहीं लेता। राग से दूर जो चिदानंदस्वभाव है, उसकी अंतर्मुख परिणति के उदर से ही चैतन्य का चाँपा जन्म लेता है अर्थात् सम्यग्दर्शनादि स्वसमयपना होता है। इसी का नाम अपूर्व मंगल है।

झींझवा में प्रातःकाल मंगलाचरण के बाद दोपहर के प्रवचन में समयसार पुण्य-पाप अधिकार के 101वें कलश पर स्वामीजी का प्रवचन हुआ, जिसमें अशुभ और शुभ दोनों से ज्ञान की भिन्नता बतलायी। जिसप्रकार अशुभराग ज्ञान से भिन्न जाति का है, उसीप्रकार शुभराग भी ज्ञान से भिन्न जाति का है। शुभ और अशुभ दोनों रागभाव ज्ञान के विपरीत हैं, अतः वे दोनों भाव अज्ञानमय हैं, ज्ञान के साथ उनका मेल नहीं है।

पुण्य-पाप को 'अज्ञानमय' कहा, इसका अर्थ क्या? जिन्हें पुण्य-पाप होते हैं, वे सब अज्ञानी हों- ऐसा इसका अर्थ नहीं है; परंतु पुण्य-पाप जितने भाव हैं, वे कहीं चैतन्य की जाति में से उत्पन्न नहीं हुए हैं, चैतन्य के अबन्धस्वभाव से वे बन्धभाव विरुद्ध हैं, इसलिये वे

अज्ञानमय हैं। ज्ञानीजन उन्हें अपनी ज्ञानदशा से भिन्न जानते हैं। वे दोनों विभावदशारूपी चांडालनी के पुत्र हैं; अशुभराग भी विभावरूप चाँडालनी से उत्पन्न है, उसीप्रकार शुभराग-पुण्य भी विभावरूप चांडालनी से ही उत्पन्न है। शुभ या पुण्य की उत्पत्ति कहीं चैतन्य में से नहीं होती।

भाई, अपने चैतन्यतत्त्व का अनुभव करने से तुझे शुभाशुभ दोनों से रहित अतीन्द्रिय आनंद अनुभव में आयेगा। शुभराग के छूट जाने से कहीं तेरे आत्मा में से कुछ कम नहीं हो जायेगा। बल्कि ज्ञान स्वयं रागरहित होकर आनंदरूप से प्रगट होगा। मोक्ष का मार्ग चैतन्य के अनुभव में से प्रगट होता है, वह राग में से प्रगट नहीं होता।

पाप और पुण्य दोनों भाव इस जीव ने अनंतबार किये हैं, पुण्य और पाप दोनों की जाति भिन्न-भिन्न नहीं है; दोनों एक ही जाति के हैं और संसार के कारण हैं, दोनों का अनुभव दु:खरूप ही है; दोनों की उत्पत्ति पराश्रित ऐसी विभावपरिणति में से होती है। ज्ञान से उन दोनों की जाति भिन्न है, अत: वे अज्ञानमय हैं। अनादि से उन पुण्य-पाप के अज्ञानमय भावोंरूप ही अपने को अनुभव करके, जीव अपने ज्ञानस्वभाव को भूल गया है और इसी से संसार में स्वर्ग-नरकादि गति में भ्रमण किया है। उसे आचार्यदेव समझाते हैं कि भाई! तेरी चैतन्यवस्तु तो पाप और पुण्य दोनों से भिन्न है। पुण्य-पापरहित आत्मा चैतन्यभाव से जीनेवाला है। धर्मी जीव पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञान को अनुभवते हुए आत्मा के परम अमृत का अनुभव करते हैं—ऐसा अनुभव करने पर ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है और मोक्षमार्ग खुलता है।

अहा, ज्ञान के वेदन द्वारा एक बार पुण्य-पाप और ज्ञान के बीच भेदज्ञानरूपी बिजली गिरी और दोनों पृथक् हो गये, अब वे कभी एक होनेवाले नहीं हैं। पुण्य-पाप का कोई अंश कभी ज्ञानरूप भासित नहीं होता। ज्ञान उन रागादि से पृथक् हुआ, उस ज्ञानरूप ही ज्ञानी अपने को सदा अनुभवता है। राग हो परंतु वह ज्ञान से भिन्नरूप है, एकरूप नहीं है; वह ज्ञान के ज्ञेयरूप है, ज्ञान के कार्यरूप नहीं है; वह बंध की धारा में जाता है, मोक्षमार्ग की धारा में नहीं आता। अरे, ऐसे ज्ञान को एक बार तो लक्ष में लो!

भाई, सांसारिक प्रतिकूलताओं की ओट में अपने चैतन्य को मत भूल। अज्ञानवश संसार में जो दु:ख तूने भोगे हैं, उनके समक्ष यह थोड़ी-सी प्रतिकूलता किस गिनती में है?

अज्ञानवश अनंत जन्म-मरण करने पड़े हैं, उस अज्ञान का अब नाश किया, तब आत्मा का जन्म-मरण रहित अमरपद भासित हुआ। अब हम अमर हुए हैं, अब संसार के जन्म-मरण हम नहीं करेंगे। (अब हम अमर भये, न मरेंगे....)

गृहस्थाश्रम में रहनेवाला जीव भी ऐसे आत्मा की श्रद्धा कर सकता है और वह जीव मोक्षमार्गी है। वह प्रशंसनीय है और आत्मा की श्रद्धा रहित पंच महाव्रती भी मोक्षमार्गी नहीं है; पुण्य करने पर भी वह संसारमार्ग में स्थित है। क्योंकि पुण्य, मोक्षमार्ग नहीं है। पुण्य-पाप से रहित वीतरागी चैतन्यतत्त्व की श्रद्धा-ज्ञान-आचरण ही मोक्षमार्ग है। अरिहंत भगवान ने ऐसे मोक्षमार्ग का उपदेश जैनशासन में दिया है।

ऐसे चैतन्यतत्त्व को जानकर जिसने सम्यग्दर्शन किया, उसे अमुक काल के पश्चात् चारित्रदशा भी आयेगी, आयेगी और अवश्य ही आयेगी। लेकिन जिसे ऐसा सम्यग्दर्शन न हो, उसे चारित्रदशा कभी प्रगट ही नहीं होती। चारित्रदशा तो महान आनंद के उपभोगरूप है। राग का उपभोग उसमें नहीं है।

ज्ञान तो आनंद में तन्मय होकर आनंद को ही भोगनेवाला होता है। रागरूपी विष का अनुभव उसमें नहीं होता। अहो! ऐसे ज्ञानवंत चिन्मूर्ति सम्यग्दृष्टि की दशा कोई अलौकिक अटपटी है। बाह्य में कदाचित् नरक का संयोग हो, लेकिन भीतर उसके ज्ञान में चैतन्यसुखरस की गटागटी चलती है। ज्ञान तो संयोग से और राग से पार सुखरस में निमग्न वर्तता है। इसीप्रकार बाह्य में स्वर्ग का संयोग हो, तथापि ज्ञानी का ज्ञान उससे अलिप्त है। ऐसा पुण्य-पाप से अलिप्त ज्ञान, वह धर्म है। ज्ञान से विरुद्ध ऐसे अशुभराग या शुभराग दोनों बुरे हैं; दोनों में से एक भी अच्छा नहीं और एक भी जीव को मोक्ष के लिये उपयोगी नहीं। अतः पुण्य-पाप दोनों को संसार का कारण जानकर दोनों से भिन्न अपने को ज्ञानस्वरूप जानना-अनुभव करना, वह धर्म है, वह संसारपरिभ्रमण से बचानेवाला और मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

सम्यग्दृष्टि का आत्मवेदन ❀ ज्ञायकभाव की उपासना

वैशाख शुक्ला 12 के दिन पूज्य स्वामीजी झींझवा से हिम्मतनगर पधारे। गुजरात के मुमुक्षुओं ने स्वामीजी का उमंगभरा भव्य स्वागत किया। सर्वप्रथम स्वामीजी ने शहर के जिन-मंदिर में दर्शन किये, तदुपरांत महावीरनगर के जिनमंदिर में दर्शन किये। मंदिर बहुत विशाल एवं रमणीय है। नीचे भगवान महावीर विराजमान हैं और ऊपर के भाग में शांतिनाथ भगवान केवलज्ञानसहित परम अतीन्द्रिय आनंद के वेदन में तल्लीन खड़े हैं और जगत को बतला रहे हैं कि इसप्रकार जगत से निरपेक्षरूप से आत्मा का अनुभव किया जाता है।

जिनमंदिर के निकट सुंदर स्वाध्यायमंदिर है। स्वामीजी ने प्रवचन में प्रवचनसार की गाथा 80-82 का स्मरण करके कहा कि अहा, अरिहंत भगवंत राग से अत्यंत भिन्न चैतन्यभावरूप परिणमित हो रहे हैं। ऐसे चैतन्यभावरूप अरिहंतदेव के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने से अपने आत्मा का शुद्ध चैतन्यस्वरूप भी जानने में आता है और मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शनादि होते हैं। पश्चात् शुद्धोपयोग द्वारा उसमें लीन होने पर राग-द्वेष का भी क्षय होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। यही मोक्ष की रीति है। समस्त तीर्थंकर इसी विधि से मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और जगत के लिये यही उपदेश दिया है।

अरिहंत भगवान ने अपने आत्मा को जैसा शुद्ध जाना है और अनुभव किया है, वैसा हो इस आत्मा का शुद्धस्वभाव है। ऐसा शुद्ध आत्मा कैसा है, वह जानने की जिसे उत्कंठा है—ऐसे शिष्य को आचार्यदेव उसका स्वरूप इस समयसार की छठवीं गाथा में बतलाते हैं। आत्मा को आनंद प्राप्त हो, उसके जन्म-मरण का अंत आये—ऐसी इस बात को समझने के लिये अंतर की उत्कृष्ट पात्रता होती है। अरे, इसका श्रवण करने में भी कितनी पात्रता की आवश्यकता है! अहो! जिसका फल अनंत सुख, ऐसी समझ के लिये अपूर्व पात्रता होना चाहिये।

अरे, सिंह जैसा हिंसक प्राणी भी जब जागृत होता है और अंतर में लीन होता है, तब सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। भगवान महावीर का जीव दसवें भव में सिंह था। आकाशगामी मुनि उसके पास आते हैं और चैतन्य का उपदेश देते हुए कहते हैं कि अरे, आत्मा! तू दसवें भव

में जगत का नाथ तीर्थंकर होनेवाला है, इतने श्रवण-मात्र से सिंह के परिणाम पलट जाते हैं, जातिस्मरण होता है और आँखों से अश्रु की धारा बहने लगती है। अंतर में ज्ञायकभाव की वीणा झंकृत हो उठती है और वह आत्मा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। पश्चात् मुनियों की भक्ति करके आत्मा के अंतरअनुभवसहित आहार का त्याग करके संल्लेखना ग्रहण करता है। सिंह का आत्मा भी एक क्षण में ऐसा कर सकता है। प्रत्येक आत्मा ऐसी सामर्थ्यवाला है। पात्र होकर जो समझना चाहता है, वह क्षण में समझकर सम्यक्त्वादि प्राप्त कर सकता है।

सम्यग्दर्शन में स्व-स्वरूप का सेवन है, राग का सेवन नहीं है। राग के सेवन द्वारा सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग से दूर ज्ञायकस्वभावरूप आत्मा जब स्वयं अपना सेवन करता है, तब वह सम्यक्त्वादि शुद्धभावरूप परिणमित होता है, और तब उस आत्मा को 'शुद्ध' कहते हैं। ऐसा ज्ञायक तो पहले भी था, परंतु उसकी खबर नहीं थी। इसलिये अपने को अशुद्धरूप अनुभव करता था। अब उसकी प्रतीति करने से वह शुद्धरूप अनुभव में आया। सम्यग्दृष्टि को ज्ञायकभाव की ऐसी उपासना होती है और वह उपासना ही सम्यग्दर्शन का उपाय है। सम्यग्दृष्टि को अपने संपूर्ण आनंदस्वभाव की प्रतीतिपूर्वक उसके अंश का वेदन होता है। अखंड स्वभाव के सन्मुख हुए बिना आनंद का अनुभव नहीं होता; और आनंद के अंशत: वेदन बिना 'संपूर्ण स्वभाव जो आनंदरूप है सो मैं हूँ'—ऐसी अखंड स्वभाव की सम्यक्-प्रतीत नहीं होती; 'मैं शुद्ध हूँ'—ऐसा उसने जाना कहाँ से? मैं शुद्ध हूँ—ऐसा स्व-सन्मुख होकर जाननेवाले की तो दशा ही बदल जाती है।

जैसे लैंडी पीपर भले ही छोटी हो, परंतु चरपराहट उसमें पूर्णरूप से विद्यमान है। उसीप्रकार इस आत्मा का क्षेत्र भले मर्यादित (असंख्यप्रदेशी) हो, तथापि उसमें ज्ञान और आनंद का स्वभाव तो पूर्ण रूप में विद्यमान है। उस स्वभाव का विश्वास करते ही पर में से परिणमन की लीनता छूटकर स्व में एकाग्रता होती है और स्वयं अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंदरूप हो जाता है।—ऐसी दशारूप परिणमित आत्मा को 'शुद्ध' कहते हैं।

भाई, यह बात ऊँची है। ऊँची है परंतु ऐसी है कि जिसे समझने से आत्मा का परम हित हो। आत्मा के हित की बात तो श्रेष्ठ होगी ही! तुच्छ बात अर्थात् रागादि परभावों की बात तो तूने अनंत बार सुनी, लेकिन उससे तेरा कोई हित नहीं हुआ। तो अब जिससे तेरा कल्याण हो, ऐसा

इस शुद्धतत्त्व की रागरहित उच्च बात को लक्ष में ले। सत्य तो श्रेष्ठ होता ही है! तू स्वयं उच्च है—महान ज्ञानस्वभावी है; तेरे ज्ञान द्वारा तेरा स्वभाव प्रत्यक्ष हो सके, ऐसा तू है। अपने महान स्वभाव को प्रत्यक्ष अनुभवगोचर करने का आत्मा में सामर्थ्य है। आत्मा अनंत चैतन्यप्रकाश का पुंज है, जिसमें से चैतन्य-किरणें निकालती हैं। राग का अंधकार चैतन्य-किरणों में नहीं होता। ऐसी चैतन्य-किरणरूप होकर जिसने अपने को पर से भिन्न एक ज्ञायकभावरूप अनुभव किया है, वह जीव धर्मी है, उसे शुद्ध कहते हैं।

❀ नवा गाँव में चैतन्य की नई बात ❀

प्रथम वैशाख शुक्ला 14 के दिन पूज्य स्वामीजी हिम्मतनगर से पास के गाँव नवा में पधारे, यह पाँच सौ की बस्ती का छोटा सा गाँव है, फिर भी स्वागत में बड़ा उल्लास था। स्वामीजी ने जिनमंदिर में दर्शन किये। स्वागत भाषण में नवा गाँव के प्रोफेसर श्री बचुभाई ने कहा कि आज इस नवा गाँवा को आत्मा की नई बात सुनने को मिलेगी, जिससे हमारे उल्लास का पार नहीं है। तीर्थंकर भगवंतों के द्वारा कही गई बात तो पुरानी है, लेकिन हमारे लिये तो वह नई बात है। बाह्य-विद्या तो बहुत पढ़ी और डिग्री प्राप्त की, लेकिन अब पूज्य स्वामीजी जो वीतरागी विद्या पढ़ाते हैं, उसकी ऐसी डिग्री प्राप्त करें कि जिससे भवभव के दु:खों से छूटकर आत्मा मुक्ति प्राप्त करे। ग्राम्यजन भी कौतूहलपूर्वक चैतन्यतत्त्व का श्रवण करने के लिये उमड़ पड़े थे। स्वामीजी के पधारने से छोटे से गाँव में भी धर्म का बड़ा उत्सव हो जाता था।

स्वामीजी ने मंगल-प्रवचन में कहा कि—जीवों ने अनादिकाल से अपने स्वरूप का विस्मरण और परद्रव्यों को अपना मानकर उनके लक्ष से-ममता से उनका स्मरण किया है, जिससे वे दु:खी हैं और संसार में भ्रमण करते हैं। अब राग से भिन्न आत्मास्वरूप पहचानकर उसका स्मरण करना और परभावों का विस्मरण करना अर्थात् उन्हें भिन्न मानकर उनकी ममता का त्याग करना—ऐसे भाव को भगवान ने मंगल कहा है।

अनुकूलता में रुचि और प्रतिकूलता में खेद, इन दोनों से पार चैतन्यतत्त्व स्वयं कौन है? उसे लक्ष में लेकर उसका स्मरण करना, वह मंगल है। आत्मा स्वयं चैतन्यलक्ष्मीवाला भगवान है। अपना भगवानपना भूलकर जो सुख के लिये परवस्तु की भीख माँगता है, वह भिखारी है। भाई! आत्मा पुण्य-पापरहित स्वयं आनंदस्वरूप है—उसका रसास्वादन करने से परम सुख

की प्राप्ति होगी। ऐसे आत्मा को पहचानने से आनंद प्राप्त हो और दु:ख दूर हो—वह मंगल है।

दोपहर के प्रवचन में समयसार की चौथी गाथा द्वारा चैतन्यतत्त्व की प्रापित की दुर्लभता समझाते हुए स्वामीजी ने कहा कि—इस जीव ने पूर्व में अनादिकाल से राग की कथा का श्रवण किया है और उसी का अनुभव किया है, लेकिन पुण्य और पाप इन दोनों से पार एक चैतन्यवस्तु अंतर में है, उसकी बात पूर्व में कभी प्रेम से सुनी भी नहीं और ऐसे चैतन्यतत्त्व का उपदेश देनेवाले ज्ञानी भी जगत में बहुत कम हैं।

जीव ने पाप करके अनंत भव नरक के और पुण्य करके इससे भी अधिक भव स्वर्ग के धारण किये। पुण्य और पाप करना तो जीव को आता है, परंतु उससे जीव का किंचित् भी कल्याण नहीं हुआ। पाप का अशुभराग या पुण्य का शुभराग, इन दोनों का फल दु:ख है, संसार है। दोनों में से किसी में भी शांति नहीं, कल्याण नहीं। इन दोनों से भिन्न जाति का चैतन्यतत्त्व है, उसकी बात जीव ने पूर्वकाल में कभी सुनी नहीं है।

सुनी नहीं—ऐसा क्यों कहा ? शब्द भले ही कान में पड़े हों, परंतु अंतरंगभाव में राग से पृथक् चैतन्यतत्त्व भासित नहीं हुआ, तो वास्तव में उसने चैतन्य की बात सुनी ही नहीं है। सुना हुआ तो वास्तव तब कहा जाता है, जब अपने अंतर में वैसा भाव प्रगट करे।

अहो, अरहंतदेव ने आत्मा को 'भगवान' कहकर संबोधन किया है। भगवान तेरा स्वभाव जगत में महिमावंत है। ऐसे स्वभाव को राग में एकमेक मत कर। चैतन्य की जाति राग की जाति से बिलकुल भिन्न है। अरे, एकबार ऐसे तत्त्व को लक्ष में तो ले। उसे लक्ष में लेने से तेरा भवभ्रमण मिट जायेगा। चैतन्य के श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूपी दीपक के बिना अकेले शुभराग के घड़े से कहीं तेरे आत्मा में धर्म का प्रकाश नहीं होगा। राग नष्ट हो जाने पर भी तेरा चैतन्यदीपक प्रकाशित होता रहेगा और अंतर में चैतन्यदीपक के बिना केवल राग द्वारा तेरा कल्याण नहीं होग।—इसप्रकार ज्ञान और राग को (दीपक और घट की भाँति) अत्यंत भिन्नता है।

अहा, राग से भिन्न चैतन्य की बात का श्रवण भी बड़े भाग्य से प्राप्त होता है और उसे सुनकर जिसने उसका प्रेम और अनुभव किया, वह तो कृतार्थ हो जाता है; चैतन्य के अपूर्व आनंद का अमृत उसे प्रगट होता है।

भाई, पहले कभी सुनी नहीं है, जानी नहीं है, इसलिये यह बात तुझे नई मालूम होती है; लेकिन पूर्वकाल में अनंत तीर्थंकर यह बात कह चुके हैं; अनंत जीव ऐसे तत्त्व को साधकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं, वही यह बात है। सत्य को समझने से ही जीव का कल्याण होता है। नई कहो या अनादिकालीन कहो, सत्य आत्मस्वरूप की यह बात है और इसे समझने पर ही जीव का भव-भ्रमण मिट सकता है। इसलिये इस बात के बहुमानपूर्वक लक्ष में लेकर समझने जैसी है।

पुण्य-पाप से पार आत्मा की धर्मकथा संतों के अंतर की बात है

प्रथम वैशाख शुक्ला पूनम को पूज्य स्वामीजी चोरीवाड पधारे। वहाँ उल्लासपूर्ण स्वागत हुआ। चोरीवाडा का जिनमंदिर सुंदर और रमणीय है, मूलनायक आदिनाथ भगवान के आसपास धातु के बड़े पट में चौबीस तीर्थंकर तथा 16 स्वप्नों का भाववाही दृश्य है, दर्शन के पश्चात् स्वामीजी के मंगल-हस्त से जैन पाठशाला का उद्घाटन हुआ। जैन बालपोथी में ॐ करके स्वामीजी ने वीतरागविज्ञान-पाठशाला का उद्घाटन किया। दो-तीन हजार की बस्तीवाले छोटे गाँव में जैन पाठशाला खोलने का उत्साह बहुत प्रशंसनीय है और बड़े नगरों के लिये अनुकरणीय है। इस छोटे से गाँव में भी बड़े शहर जैसी विशाल प्रवचनसभा होती थी। कई हरिजन भाई-बहिन भी स्वामीजी के प्रवचन में आते थे। मंगल-प्रवचन में अनंत सिद्धों को स्मरण करके नमस्कार करते हुए स्वामीजी ने कहा कि ऐसे अनंत सिद्धों को जो ज्ञान में लेता है, उसका ज्ञान राग से पृथक् होकर स्वसन्मुख होता है और सिद्ध जैसे अपने आत्मा का अनुभव करता है। वह अपूर्व मंगल है।

प्रवचन में समयसार की 72वीं गाथा द्वारा शुभ-अशुभ राग से भिन्न भगवान आत्मा कैसा है, वह समझाया। शुभ-अशुभ यह दोनों तो बंध के कारण हैं, ज्ञानस्वरूप आत्मा दोनों से भिन्न है। श्रीमद् राजचंद्र भी कहते हैं—

जे जे कारण बन्धनां तेह बन्धनो पंथ;
ते कारण छेदक दशा मोक्षपंथ भव-अंत।

आत्मा में पूर्ण ज्ञान और आनंदस्वभाव भरा हुआ है, वह इष्ट है। और शुभ-अशुभ रागभाव उससे विरुद्ध होने से अनिष्ट हैं-शत्रु हैं; उन्हें जीतकर जो सर्वज्ञ हुए, वे अरिहंत हैं। अरिहंत भगवान जैसा इस आत्मा का शुद्धस्वरूप है, वह सदैव अत्यंत निर्मल है और रागादि भाव मलिन हैं, चैतन्य से विपरीत हैं।—भेदज्ञान द्वारा आत्मा के स्वभाव और परभाव को भिन्न जाने, तब वह जीव अपने को ज्ञानरूप ही अनुभव करता है और रागादि भावों को पृथक् जानकर उनका कर्ता नहीं होता। ऐसा ज्ञानस्वभाव की प्रतीति रहित जीव ने अनंतकाल संसार के दु:खों में ही व्यतीत किया है—

वीत्यो काल अनंत जे कर्म शुभाशुभमांय,
तेह शुभाशुभ छेदतां उपजे मोक्ष स्वभाव॥

जीव ने अनंत काल तक संसार में परिभ्रमण किया; क्यों भ्रमण किया ? क्या मात्र पाप के कारण परिभ्रमण हुआ ? नहीं; पुण्य-पाप दोनों कर-करके जीव ने संसार में परिभ्रमण किया है। संसार में जीव ने पाप ही किये हैं और पुण्य नहीं किया—ऐसा नहीं। पाप और पुण्य दोनों किये हैं, परंतु उन पुण्य और पाप से भिन्न चैतन्यवस्तु स्वयं कौन है, उसे कभी जाना नहीं। ऐसे चैतन्यतत्त्व को जानने से जीव पुण्य-पापरूपी आस्रवों से छूट जाता है। अहा ! जहाँ ज्ञान हुआ कि मैं ज्ञान हूँ, ज्ञान तो शांतिस्वरूप है और रागादिभाव ज्ञान से विपरीत हैं, उनमें आकुलता है—ऐसा जहाँ भेदज्ञान हुआ, उसी क्षण आत्मा रागादि से भिन्न ज्ञानरूप परिणमित होने लगता है। उस ज्ञान में आस्रवों का अभाव है।

गुण-गुणी का सूक्ष्म विकल्प भी आस्रव का कारण है, वह ज्ञान की जाति से भिन्न है। विकल्प हो, वह दूसरी बात है, लेकिन विकल्प को ज्ञान में एकमेक करना, वह अज्ञान है, वह अपने शांत-चैतन्य को भूल जाता है। जब आत्मा, अपने ज्ञानस्वभाव को समस्त रागादिभावों से भिन्न ज्ञान में ग्रहण करता है, तब उसके अंतर में अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है, शांति का स्रोत प्रवाहित होता है—ऐसा अनुभव करने के लिये यह एक धर्मकथा है।

आत्मा चैतन्यमय, स्वयं अपने को जाने ऐसा है। राग जड़स्वभावी है, उसे कुछ खबर

नहीं है। 'मैं राग हूँ', 'यह राग है' और मैं ज्ञान हूँ—ऐसा ज्ञान ही जानता है। रागादि आस्रवों में चेतकपना नहीं है, इसलिये उन्हें जड़स्वभावी कहा है। जैसे जड़ वस्तु स्वयं अपने को नहीं जानती, दूसरा उसे जानता है, उसीप्रकार रागादि स्वयं अपने को नहीं जानते, 'दूसरा' जानता है। दूसरा अर्थात् राग से भिन्न, ऐसा ज्ञानस्वभावी आत्मा स्व-पर को जानता है; राग को जानते समय स्वयं रागरूप नहीं होता, ज्ञानरूप रहकर ही राग को जानता है। ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा को पहिचानना ही आस्रव से (संसार से) छूटने की रीति है।

राग की उत्पत्ति चैतन्यभाव में से नहीं होती, चैतन्यभाव में से चैतन्यभाव ही उत्पन्न होते हैं। राग के समय राग से भिन्न चैतन्य भगवान विराजमान है, उसे लक्ष में लेनेवाला जीव ज्ञानस्वभाव को ही करता है, राग को ज्ञान के कार्यरूप वह नहीं करता—यह ज्ञानी का लक्षण है। ऐसे ज्ञानस्वरूप अपने को अनुभव करना, वह सीमंधर परमात्मा का संदेश है, श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव विदेहक्षेत्र में से यह संदेश लाये थे, वही यहाँ कहा जाता है। संतों के हृदय की यह बात है।

अरे भाई, विकल्प कहीं चैतन्य की जाति नहीं, वह अचेतन है। तो क्या उसके द्वारा तुझे चैतन्य का अनुभव होगा? व्यवहार के जितने विकल्प हैं, वे सब चैतन्य से विरुद्ध हैं, उन विरुद्धभावों द्वारा आत्मज्ञान कैसे होगा? अचेतन-विकल्प में ऐसी शक्ति नहीं है कि वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद की प्राप्ति कराये। शुभविकल्प-राग कदाचित् देव-गुरु-शास्त्र की ओर का हो, लेकिन वह कहीं चैतन्य की जाति का नहीं, उसके फल में मुक्ति या धर्म प्राप्त नहीं होता। उसके फल में संसार की प्राप्ति होती है। चैतन्य की शांति का स्वाद किसी भी राग में नहीं। शांति और आनंद का स्रोत तो चैतन्य-सरोवर में से ही प्रवाहित होता है।—भाई! एक बार ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता का निर्णय कर... जिससे तुझे ज्ञान का अद्भुत स्वाद आयेगा और तू धन्य हो जायेगा।

राग और ज्ञान की भिन्नता जानकर जीव जब अपने अंतरस्वभाव में आता है, तब उसे अपूर्व आनंद का वेदन होता है; इसप्रकार भगवान आत्मा का स्वभाव तो आनंद उत्पन्न करनेवाला है, और परोन्मुखता की रागवृत्तियाँ तो दुःख उत्पन्न करनेवाली हैं। मंदरागरूप शुभराग हो, वह भी दुःखरूप है, वह कहीं सुख का उपाय नहीं है। सर्वथा भिन्न जो चैतन्यतत्त्व है, वह स्वयं सुखरूप है, उसके साथ कभी दुःख की उत्पत्ति नहीं होती। इसप्रकार आत्मा के

स्वभाव में और राग में बिलकुल भिन्नता है।—ऐसा भेदज्ञान ही आस्रव को रोकने का साधन है। राग की रंचमात्र अपेक्षा उसमें नहीं है अर्थात् राग के साथ किंचित् भी कर्ता-कर्मपना, साधन-साध्यपना या कारण-कार्यपना नहीं है।

राग से पृथक होकर ऐसे आत्मस्वभाव को अनुभव में लिया, वहाँ अनंत गुणों के निर्मल परिणमन का स्वाद एक साथ आया। सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर अकेला श्रद्धागुण ही निर्मल हुआ—ऐसा नहीं है; अभेद चैतन्य की अनुभूति में उसके सर्व गुणों का स्वाद एकरसरूप वेदन में आता है। इसी को श्रीमद् राजचंद्रजी ने 'सर्वगुणांश सो सम्यक्त्व' कहा है। अहो, आत्मा के अनंत गुणों की गंभीर महिमा को सम्यग्दृष्टि जानते हैं और जहाँ ऐसे गंभीर महिमावाले अपने आत्मा का अनुभव किया, वहाँ रागादि समस्त अन्य भावों को अपने स्वभाव से बिलकुल भिन्न जानता है।—इसका नाम भेदज्ञान है, और यही धर्म है। चैतन्य का यह धर्म पुण्य-पाप दोनों से पार है और यही मोक्ष का कारण है।

विविध समाचार

इंदौर में

पूज्य श्री कानजीस्वामी के सानिध्य में जैनधर्म शिक्षण-शिविर तथा धर्म-प्रभावना

जैनधर्म शिक्षण संयोजन समिति इंदौर द्वारा इस वर्ष भी तारीख 25 मई से 8 जून तक 15 दिन का शिक्षण-शिविर उल्लासपूर्ण वातावरण में संपन्न हुआ। अंतिम 4 दिनों में आध्यात्मिक सत्पुरुश श्री कानजीस्वामी इंदौर जैन समाज के विशेष आग्रह एवं निमन्त्रण पर इंदौर पधारे। स्वामीजी के स्वागत हेतु श्री शांतिनाथ जिनालय के प्रांगण में हजारों लोग एकत्रित हुए थे। सुंदर जुलूस के रूप में वहाँ स्वामीजी को ले जाया गया। जिनमंदिर में दर्शन के पश्चात् पंडाल में स्वागत-समिति के अध्यक्ष श्री राजकुमारसिंहजी ने स्वागत-भाषण किया।

स्वामीजी द्वारा 8 प्रवचन हुए। सर्वज्ञ-वीतराग कथित तत्त्वार्थों में शुद्ध उपादेय-तत्त्व की महिमा अपने आत्मा में प्रगट करना चाहिये। इस दुर्लभ मनुष्यपर्याय में भेदज्ञान की

आराधना सर्वोच्च कर्तव्य है... आदि प्रयोजनभूत तत्त्व का अनुभवपूर्ण परिज्ञान कराया। आपके प्रवचनों का लाभ जैन और जैनेतर हजारों जिज्ञासुओं ने प्राप्त किया तथा खंडवा, सनावद, रतलाम, धार, उज्जैन, बड़नगर, आदि से एक हजार से भी अधिक स्त्री-पुरुषों ने 4 दिन तक अनुपम आध्यात्मिक प्रवचनों से प्रेरणा ग्रहण की।

शिक्षण-शिविर का उद्घाटन जयपुर निवासी श्री सेठ पूरणचंदजी गोदिका ने किया। अपने प्रेरणाप्रद संदेश में जैनधर्म शिक्षण-शिविर के विशाल आयोजन की प्रशंसा करते हुए सभी में धार्मिक ज्ञान और जीवनचर्या के विकास हेतु प्रेरणा दी। समारोह की अध्यक्षता श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री ने की।

छह घंटे के कार्यक्रम में शिक्षण कक्षाएँ तीन बार, दो बार आध्यात्मिक प्रवचन, एक बार तत्त्वचर्चा, शंका-समाधान होते थे। विद्यार्थियों तथा समाज की सुविधा हेतु विभिन्न समयों पर एवं विभिन्न स्थानों पर जैन सिद्धांत प्रवेशिका, छहढाला, मोक्षशास्त्र, मोक्षमार्गप्रकाशक, बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3, वीतरागविज्ञान पाठमाला भाग 1-2 की कक्षाएँ 15 दिन तक आयोजित की गईं। यह लाभ 800-900 व्यक्तियों ने लिया और स्वामीजी के प्रवचनों में हजारों की संख्या रही। वक्ताओं में श्री पंडित खेमचंदजभाई सोनगढ़, श्री युगलजी कोटा, श्री पंडित हुकमचंदजी जयपुर थे। शिविर का समापन समारोह पूज्य स्वामीजी के सानिध्य में संपन्न हुआ। श्रोताओं के अनुरोध पर श्री युगलजी ने अपनी कविता 'लो रोको तूफान चला रे....' ओजस्वी वाणी में प्रस्तुत की थी। प्रो. जमनालालजी ने शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की। शिक्षण-समिति के अध्यक्ष द्वारा शिविरार्थी मेहमानों के प्रति तथा मुमुक्षु मंडलों के प्रति आभार व्यक्त किया; संस्थाओं एवं विद्वानों को सहयोग हेतु धन्यवाद दिया। परीक्षा में सम्मिलित 170 में से 16 विशेष योग्यतावाले बालक-बालिकाओं को विशेष पुरस्कार प्रदान किये गये।

— प्रो. जमनालाल जैन (संयोजक)

आगरा में श्री वीतरागविज्ञान आध्यात्मिक शिक्षण एवं प्रशिक्षण-शिविर का

उद्घाटन समारोह

दिनांक 4-6-72 को उक्त समारोह में सर्वप्रथम आगन्तुक अतिथियों का स्वागत जुलूस श्री दिगंबर जैन मंदिर मोती कटरा से प्रारंभ होकर श्री दिगंबर जैन मंदिर तारकी गली

पंडाल में पहुँचा और वहाँ पर श्रीमान् पंडित खेमचंद्रजीभाई सोनगढ़ का मांगलिक प्रवचन हुआ, जिसमें उन्होंने आत्मज्ञान से ओतप्रोत त्रिकाली ज्ञायकस्वभावी आत्मा के प्रति जागृति हेतु प्रकाश डाला। मानव की परिभाषा करते हुये उन्होंने बतलाया कि जो हिताहित का ज्ञान करे एवं मनन करे, वही मानव है। श्री नेमीचंद्रजी पाटनी मंत्री ने शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर की उपयोगिता बतलाते हुए इसकी प्रगति पर जोर दिया; उन्होंने घोषणा की कि शिविर में जो भी आय होगी, उसका आगरा एवं संपूर्ण उत्तरप्रदेश में वीतरागविज्ञान पाठशालायें चालू करने में उपयोग किया जावेगा। यह सुझाव सभी को पसंद आया और कुछ महानुभावों ने 17 पाठशालायें एक वर्ष तक चलाने के लिये आर्थिक सहयोग के वचन दिये। तत्पश्चात् मंत्री महोदय ने बाहर से आये हुये त्यागीगण, विद्वान एवं श्रीमानों का परिचय कराया। श्रीमान् प्रेमचंद्रजी सर्राफ स्वागताध्यक्ष ने अपने भाषण में सभी अतिथियों का स्वागत करते हुये आभार प्रगट किया; श्रीमान् सेठ भगवानदासजी जैन सागरवालों ने शिक्षण-शिविर का उद्घाटन किया और अपने भाषण में उन्होंने बतलाया कि मैं गत चार वर्षों से शिविर के कार्यक्रमों से भलीभाँति परिचित हूँ। आज के इस भौतिकवादी युग में इन धार्मिक शिविरों की अत्यंत आवश्यकता है जिससे हमारे बालकों में प्रारंभ से ही धार्मिक संस्कार प्रबल हों। यह तभी संभव हो सकता है कि हम शिविर लगाकर धर्माध्यापकों को प्रशिक्षित करें। प्रौढ़ शिक्षण-शिविर का उद्घाटन श्री महेनद्रकुमारजी सेठी जयपुरवालों ने किया; उन्होंने अपने भाषण में प्रौढ़ वर्ग के लिये शिविर की उपयोगिता पर प्रकाश डाला और उन्होंने भावना प्रगट की कि प्रौढ़ वर्ग को इसका पूरा-पूरा लाभ लेना चाहिये। श्रीमान् भगतरामजी महामंत्री अखिल भारतवर्षीय दिगंबर जैन परिषद ने प्रशिक्षण-शिविर का उद्घाटन करते हुये कहा—कि श्री वीतरागविज्ञान विद्यापीठ जयपुर की जो पद्धति बच्चों में धार्मिक शिक्षा देने की प्रारंभ की है, वह अत्यंत श्रेष्ठकर है और अध्यापकों के प्रशिक्षण की जो प्रणाली है, वह अत्यंत ही आकर्षक है। इससे समाज का अधिक हित हो सकता है। श्री जवाहरलालजी लोढ़ा संपादक 'श्वेतांबर जैन' ने भी शिविर की उपयोगिता की सराहना की। नवभारत टाइम्स तथा अमर उजाला पत्र ने 4-5-6 जून को विस्तृत समाचार दिये थे। श्री प्रतापचंद्रजी जैन ने शिक्षण-शिविर के आयोजन पर प्रकाश डाला। श्रीमान् सेठ पूरनचंद्रजी गोदीका जयपुर ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बतलाया कि आगरा की धर्मप्रेमी समाज ने स्व-पर कल्याण के लिये यह शिक्षण एवं प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया है,

इससे यहाँ की समाज का आध्यात्मिक प्रेम प्रगट होता है। मेरी हार्दिक शुभकामना है कि घर-घर में वीतराग विज्ञानता का प्रसार एवं प्रचार हो। अंत में श्रीमान् सेठ पदमचंद्रजी सर्राफ ने सभी अतिथियों का आभार प्रगट किया एवं धन्यवाद देते हुये श्री भगवान महावीरस्वामी की जयघोष के पश्चात् सभा विसर्जित की गई। प्रचारमंत्री—सुमेरचंद्र जैन 'भगत'

श्री वीतरागविज्ञान शिक्षण-शिविर आगरा के विशेष समाचार

आगरा शहर के प्रत्येक मोहल्ले में प्रत्येक जिनमंदिर में और प्रत्येक घर में श्री वीतरागविज्ञान विद्यापीठ द्वारा जैन शिक्षण-शिविर का वातावरण गूंज रहा था। शिविर उद्घाटन के समय आगरा के प्रतिष्ठित सज्जनों सहित तीन हजार संख्या ने भाग लिया। सवेरे जुलूस निकला था। आगरा के सभी केन्द्रों में अध्यापकों द्वारा यह शिक्षण चल रहा था। 1200 छात्र अध्ययन करते थे। पंडाल में प्रौढ़ कक्षा में श्री पंडित खेमचंदभाई जैन सि. प्रश्नोत्तरमाला पढ़ाते थे; भाग लेनेवालों की उपस्थिति करीब 800 थी। छहढाला श्री पंडित ज्ञानचंदजी (विदिशा) पढ़ाते थे, संख्या 300 करीब थी। जैन सि. प्रवेशिका श्री पंडित धन्नालालजी लश्करवाले पढ़ाते थे; वहाँ 150-200 संख्या थी। दोपहर में शहर के मुहल्लों में प्रौढ़ शिक्षण कक्षाएँ चलती थीं। आठ बजे तक प्रशिक्षण शिविर की कक्षाएँ तथा अध्यापकों की विशेष कक्षाएँ दो बार चलती थीं; जिसमें अध्यापकों के 325 प्रवेश-पत्र आये थे। 248ने प्रवेश प्राप्त किया। बालबोध प्रशिक्षण तथा प्रवेशिका प्रशिक्षण चलता था।

सायंकाल भक्ति के कार्यक्रम के पश्चात् श्री पंडित खेमचंदभाई द्वारा 1 घंटा, तथा पूर्व आधा घंटा अन्य विद्वान पढ़ाते थे। उपनगरों में भी जोरों से माँग होने पर श्री ज्ञानचंदजी आदि को जाना पड़ता था। रात्रि में शंका-समाधान और जिनेन्द्र-भक्ति का कार्यक्रम रहता था। सवेरे 4.00 से रात्रि के 10.00 बजे तक सारे शहर में धार्मिक वातावरण रहता था। पंडित श्री हुकमचंदजी की प्रशिक्षण शैली से सभी अध्यापक बहुत प्रभावित हुए। बाहर गाँव से आये हुए श्रोतागणों की संख्या दिनांक 6 तक 650 थी; जिसमें वृद्धि होती रही, भोजन की व्यवस्था आगरा के अमुक भाईयों की ओर से थी।

रथयात्रा बड़ी शानदार थी। चार हाथी तथा ट्रक में भजनमंडली नृत्य करती थी। सभी साधर्मी बंधुओं के सहयोग से अभूतपूर्व शोभा बनी थी।

श्रुतपंचमी (जेठ सुदी 5) को जयपुर, ग्वालियर आदि से दर्शनीय प्राचीन जैन ग्रंथ-भंडार में से अति प्राचीन ग्रंथ तथा चित्रकला कृतियाँ मंगवाकर उनकी विशाल प्रदर्शनी लगाई थी; उत्सव में जो आमदनी हुई थी, उसमें से उ.प्र. में वीतरागविज्ञान पाठशालाएँ खोली जायेंगे। एक साल के लिये 27 पाठशालाएँ खोलने के लिये वचन मिल गये हैं रुपये 240 के हिसाब से। उसमें 10 तो श्री पूरणचंद्रजी की ओर से हैं। यहाँ कुछ मुमुक्षुओं ने ऐसा निर्णय किया है कि वे मोटरकार लेकर महीने में 2-4 बार आसपास के गाँवों में घूम-घूमकर पाठशाला तथा स्वाध्यायशाला खुलवाने तथा चालू रखने की प्रेरणा का कार्य करेंगे। इसप्रकार शिक्षण शिविर में जिनेन्द्रदेव कथित धर्म-प्रभावनार्थ अनेक नई-नई योजनाएँ उदित हो रही हैं। इन सब पवित्र कार्यों में परम पूज्य गुरुदेवश्री का महान प्रभावना का योग है कि हजारों धर्मजिज्ञासु लोग रुचिपूर्वक सत् श्रवण का लाभ ले रहे हैं।

तारीख 14 को श्री बाबूभाई तथा श्री युगलजी पधारे। उन्हीं के प्रवचनों का तारीख 23 तक बहुत बड़ी संख्या में श्रोताओं ने लाभ लिया। तारीख 15 की रात से कर्फ्यू लग गया था तो भी हमारे कार्यक्रमों में बाधा नहीं आई। तारीख 16 को श्रुतपंचमी के निमित्त शास्त्रजी की रथयात्रा निकाली थी। कर्फ्यू होने से 20 मिनिट का जुलूस था। जिसमें शहर के हजारों लोगों ने भाग लिया था। श्रुत-जिनवाणी-पूजा का कार्यक्रम भी बहुत प्रभावक था, आगरा में श्रुतपंचमी का ऐसा उत्सव कभी ही नहीं, ऐसा लोग बारंबार कहते थे।

जिस दिन अध्यापकों की परीक्षा थी, उस दिन पंडाल का दृश्य देखते ही बनता था। 208 अध्यापक परीक्षा में एकसाथ बैठे थे और इसीप्रकार शहर के 22 केन्द्रों पर 1000 छात्रों की परीक्षा का दृश्य भी तत्त्वज्ञान की अपूर्व प्रभावना दिखा रहा था।

अंतिम दिन की परीक्षा में 1150 बालकों ने प्रवेश-फार्म भरे थे; परीक्षा में 850 छात्र उत्तीर्ण हुए। प्रौढ़ों की परीक्षा नहीं ली गई किंतु वे करीब 800 संख्या में थे। प्रवचन में तीन हजार करीब श्रोतागण थे और श्रुतपंचमी के दिन तो करीब 5000 संख्या होगी।

आगरा में इस अवसर पर उ.प्र. मुमुक्षु मंडल की स्थापना की गई। उ.प्र. में सुचारुरूप से कार्य करने की योजना बनाई गई। घूम-घूमकर जहाँ पर माँग हो वहाँ मुमुक्षु मंडल, स्वाध्यायशाला, पाठशाला बनाना है; उसके लिये एक कमेटी भी बनाई गई। अध्यक्ष श्री

पद्मचंदजी तथा मंत्री श्री सोभागमलजी पाटनी हैं, इसप्रकार कई जिलेवार मंत्री आदि बनाये गये हैं। 27 पाठशालाएँ खुलवाने के लिये 20) प्रतिमाह अनुदान देनेवाले दाताओं की स्वीकृति आ चुकी है।

तारीख 22 को दीक्षांत समारोह पर श्री सेठ साहू शांतिप्रसादजी आनेवाले थे; किंतु अस्वस्थता के कारण न आ सके। आगरा के संसद सदस्य सेठ अचलसिंहजी की अध्यक्षता में उत्सव संपन्न हुआ। कर्फ्यू होने पर भी तीन हजार से अधिक संख्या होगी। 208 प्रमाण-पत्र बाँटे गये। तारीख 24 को रथयात्रा का कार्यक्रम था (कर्फ्यू नहीं था)। जिसने सारे शहर में धूम मचा दी। दर्शकों का विशाल समूह, चार हाथी, भजनमंडली आदि बहुत साजसज्जा थी। इस रथयात्रा का जुलूस तो आगरा के इतिहास में अजोड़ था। उस दिन बाहर गाँव से आये हुए सब मेहमानों को प्रीतिभोज दिया गया था। आशातीत सफलता के साथ सर्वज्ञ-वीतरागकथित जैन-शिक्षण का विशाल समारोह उत्तम ढंग से संपन्न हुआ। — नेमीचंद पाटनी

महाराष्ट्र में टेप-रिकार्ड और जैन तीर्थों की फिल्म द्वारा धर्म-प्रचार

फतेपुर (गुजरात) पंचकल्याणक महोत्सव में भाग लेकर ब्रह्मचारी दीपचंदजी बम्बई, पूना, सोलापुर, बारामती, बार्सी, वासिम, हिंगोली, आकोला आदि छोटे-बड़े 25 गाँवों में गये और जैनधर्म का अच्छा प्रचार किया। पूज्य कानजीस्वामी द्वारा जो चारों अनुयोग पर आध्यात्मिक प्रवचन होते हैं, वे आप टेपरिकार्डों द्वारा समाज को सुनाते हैं और जैन तीर्थों की फिल्मों आदि का कार्यक्रम रखते हैं। शास्त्रसभा, शंका-समाधान और पाठशाला की पद्धति से जैन-शिक्षण के अतिरिक्त रिकार्डों द्वारा तत्त्वज्ञान का प्रचार कर रहे हैं। परम प्रेम से समय, शक्ति और उत्साह लगाकर समाज को जागृत करने की चेष्टा करते हैं। हिंगोली से सोलह जिज्ञासु श्रावकों को साथ लेकर आगरा में विशाल आयोजन सहित शिक्षण-शिविर 20 दिन का था वहाँ गये थे। आप 26 दिन तक रहकर जयपुर, अजमेर, खंडवा होकर हिंगोली आये हैं, वहाँ से सोलापुर, कोल्हापुर आदि नगरों का कार्यक्रम है।

[नोट:—छह साल से ब्रह्मचारी जी अवैतनिक निस्वार्थी प्रचारक हैं। श्री नवनीतभाई सी. जवेरी की ओर से प्रचार-कार्य करते हैं, जहाँ से माँग आती हैं, वहाँ जाते हैं।]

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में प्रौढ़ जैन शिक्षण-शिविर

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी श्रावण सुदी 5 से भादों वदी 10 वीं तदनुसार तारीख 14 अगस्त से 2 सितम्बर तक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया है। हिंदी भाईयों के समान गुजराती भाईयों को भी उचित संख्या में आकर लाभ लेना चाहिये। निर्मल तत्त्वज्ञान और परमोपकारी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी का साखात् समागम तथा उनके द्वारा आध्यात्मिकरस भरी अमृतमय वाणी का श्रवण जीवन में धन्य अवसर है। भोजनादि तथा पुस्तकों की व्यवस्था संस्था द्वारा होती है। स्त्रियाँ शिक्षण-कक्षा में नहीं बैठ सकेंगी, इच्छुक बंधु पत्र द्वारा संस्था को अवश्य सूचित करें। (फोन नं. 52 वाया-सीहोर) पता—

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

दिल्ली—आध्यात्मिक संत परम पूज्य श्री कानजीस्वामीजी की 83वीं जन्म-जयंती राजधानी में मनाई गई। प्रातः दिगम्बर जैन नया मंदिर धर्मपुरा में पूजन एवं शास्त्र-प्रवचन का कार्यक्रम हुआ, तथा सायंकाल श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर भारत नगर दिल्ली में भक्ति व स्वाध्याय के अतिरिक्त श्रीपाल जैन की अध्यक्षता में एक सभा हुई, जिसमें श्री शांतिलाल बनारसीदास संपदाक 'जैनप्रकाश' एवं श्री भगतराम जैन मंत्री अखिल भारतीय दिगंबर जैन परिषद तथा अन्य व्यक्तियों ने पूज्य श्री कानजीस्वामी के व्यक्तित्व एवं उनके द्वारा किये गये अद्‌भुत आध्यात्मिक आधार पर धर्म के प्रचार-प्रसार की प्रशंसा की।

मंत्री - रविचंद जैन, श्री दिगंबर जैन मुमुक्षु मंडल

सहारनपुर—पूज्य श्री कानजीस्वामी की 83 वीं जन्म-जयंती बहुत ही उल्लास पूर्ण वातावरण में मनायी गई। सामूहिक जिनेन्द्रदेव का पूजन हुआ तथा अनंतराम 'मुख्तार' की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें अनेक भाई-बहनों ने महान उपकारी श्री कानजीस्वामी के जीवन पर प्रकाश डाला। सभापति महोदय ने स्वामीजी को अत्यंत विनयपूर्वक श्रद्धांजलि अर्पित की। चार-पाँच भाई बहिनों ने तेरासी रुपये की रकमें दान में लिखवायीं। (स्थानाभाव के कारण विस्तृत समाचार नहीं दिये जा सके।) —देवचंद जैन, साहित्याचार्य

फतेपुर में पंचकल्याण के अवसर पर भगवान के माता-पिता विद्वान भाई श्री बाबूभाई तथा उनकी धर्मपत्नी सौ० ताराबहिन बने थे। जिससे राजदरबार में बहुत सुंदर तत्त्वचर्चा होती थी। समुद्रविजय महाराज की राजसभा की तत्त्वचर्चा सुनकर सभी प्रसन्न हुए थे।

भजन

यही इक धर्ममूल है मीता!
निज समकितसार सहीता ॥यही० ॥टेक ॥

समकित सहित नरकपदवासा, खासा बुधजन गीता।
तहँतें निकसि होय तीर्थंकर, सुरगन जजत सप्रीता ॥यही० ॥1 ॥

स्वर्गवास हू नोको नाहीं, विन समकित अविनीता।
तहँतें चय एकेन्द्री उपजत, भ्रमत सदा भयभीता ॥यही० ॥2 ॥

खेत बहुत जोते हु बीज विन, रहत धान्यसो रीता।
सिद्धि न लहत कोटि तपहूतें, वृथा कलेश सहीता ॥यही० ॥3 ॥

समकित अतुल अखंड सुधारस, जिन पुरुषननें पीता।
'भागचंद' ते अजर अमर भये तिनहीनें जग जीता ॥यही० ॥4 ॥

Regd. No. G. 108

"आज हमारे यहाँ आनंद की दोज उगी है"

वैशाख शुक्ला दोज की मंगल-बधाई

फतेपुर में 70वीं जयन्ती के अवसर पर पूज्य स्वामीजी आत्मधर्म के विशेष अंक का अवलोकन कर रहे हैं.... उसमें बाहुबली (दक्षिण) यात्रा के चित्र एकाग्र चित्त से देख रहे हैं।